ब्रज के लोकगीतों का

यौन मनोविश्लेषण

डॉ. रामसिंह

ब्रज के लोकगीतों का यौन मनोविश्लेषण

डॉ. रामसिंह

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

जीव विज्ञान

जीव विज्ञान प्राणियों की समस्त जैविक क्रियाओं का क्रमबद्ध और गहन अध्ययन है। मानव इस सृष्टि का श्रेष्ठतम प्राणी है, उसी से यह सृष्टि गरिमा-संपन्न है। उसकी शारीरिक संरचना के साथ उसके पोषण, श्वसन, पाचन, रक्त-परिभ्रमण, उत्सर्जन, प्रजनन आदि जैविक क्रियाओं का सूक्ष्माति-सूक्ष्म अध्ययन करके जीवन को स्वस्थ, सुखी और दीर्घजीवी बनाने का उपक्रम किया जाता है। जीव विज्ञान शरीर की बाह्य और आंतरिक क्रियाओं का अनुशीलन तो करता ही है, साथ ही नलिका विहीन ग्रंथियों तथा जननांगिक क्षरण से निकलनेवाले द्रव्यों तथा निर्यास का विश्लेषण करता है। इस निर्यास को विज्ञान की भाषा में हार्मोन कहते हैं, जो शारीरिक जैविक क्रियाओं में अहम भूमिका का निर्वहन करता है। मस्तिष्क की सभी क्रियाएँ भी इसी से संपादित होती हैं। मस्तिष्कीय क्रिया-प्रति क्रियाओं के अध्ययन के लिए मनोविज्ञान आविष्कृत हुआ है।

मनोविज्ञान—मनोविज्ञान भी क्रमबद्ध, सटीक एवं प्रायोगिक विज्ञान है, क्योंकि विज्ञान की भाँति ही इसके परीक्षणों के परिणामों की वैधता की जाँच करके इसके निष्कर्षों की सत्यता को परखा जाता है। मनोविज्ञान को परिभाषित करने में मनोविज्ञानियों ने अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया है—

1. आत्मा का विज्ञान—कुछ विद्वानों की धारणा है कि मनोविज्ञान आस्था का विज्ञान है, किंतु आत्मा शब्द दर्शनशास्त्र के सन्निकट है। आत्मा स्वरूप क्या है। यह स्पष्ट करना अत्यंत कठिन एवं जटिल कार्य है। दार्शनिक डेकार्टे ने प्राणियों के व्यवहार को समझने के लिए भौतिक विज्ञान का सहारा लेकर आत्मा को जीवन और मानवीय गुणों का आधार स्वीकार किया है। यह ठीक है कि मानव में चिंतन-शक्ति आत्मा के कारण ही होती है, किंतु आत्मा का कोई आकार नहीं है, असीम, अपरिमेय और शाश्वत है। अत: आत्मा का विज्ञान कहना सार्थक नहीं है।

2. मन का विज्ञान—कुछ मनोवैज्ञानिक मन के ज्ञान का विज्ञान कहते हैं। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक जॉन लॉक की यही धारणा थी। परंतु जहाँ मन के परिपूरक आत्मा, चेतना एवं मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं का स्वरूप क्या है? यह अनुत्तरित है। मन की व्याख्या करना संभव नहीं है। इसे मन का विज्ञान भी कहना अनुपयुक्त है।

3. चेतना का विज्ञान—प्रत्येक प्राणी अपनी क्रिया-प्रतिक्रियाओं की अनुभूति अपनी आंतरिक संचेतना के कारण ही करता है, जिसे हम अत: प्रेरणा भी कह सकते हैं। मनुष्य सुबह से शाम तक अनगिनत क्रियाएँ करता है और वह अपने बाह्य वातावरण से सदैव चैतन्य रहता है। इस चेतना के मनोविज्ञान का विकास जर्मन के मनोवैज्ञानिक विलियम बुंट के समय में हुआ। विलियम जेम्स और टिचनर आदि मनोवैज्ञानिक चेतना की दशाओं और क्रियाओं का वर्णन तथा व्याख्या के रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

चेतना आत्मा से संपृक्त है, जो हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का एक सूक्ष्म कारक है, जिसमें अचेतन मन, सहज क्रिया, नाड़ी संस्थान आदि चेतना के अंश नहीं हैं। इस कारण मनोविज्ञान का क्षेत्र परिसीमित हो गया है इसलिए चेतना के मनोविज्ञान की परिभाषा को अपूर्ण मानकर उसपर पुनर्विचार किया गया है।

4. अचेतन का विज्ञान—अचेतन मन मनोविश्लेषण का आधारभूत सिद्धांत है, क्योंकि अचेतन मन गत्यात्मक है। फ्रायड के अनुसार मानव की वास्तविक व्यावहारिक क्रियाएँ अचेतन मन से निबद्ध हैं, इसलिए अचेतन मन द्वारा मानव की शारीरिक और मानसिक, चेष्टात्मक, बोधात्मक एवं संवेगात्मक क्रियाओं का संचालन होता है। हमारे अचेतन मन में सांस्कृतिक संस्कार अभिनिविष्ट होते हैं। किंतु महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगवासिष्ठ' में कहा है—

मनोहिभावनामात्र, भावना स्पंद धार्मिणो

अर्थात् मन तो भावनामात्र है, सारे कार्य तो भावना से संपादित होते हैं, परंतु भावना का कारण अज्ञात है। मनोवैज्ञानिकों ने अचेतन मन को मनोविज्ञान के मन का विज्ञान कहने का निष्फल प्रयास किया है।

5. व्यवहार का विज्ञान—'व्यवहारवाद' के जनक वाट्सन ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में मनोविज्ञान को व्यवहार का शुद्ध विज्ञान कहा था। इस संदर्भ में मनोवैज्ञानिक स्किनर की परिभाषा सर्वमान्य प्रतीत होती है —''मनोविज्ञान जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रतिक्रियाओं के व्यवहार से अभिप्राय प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं समान्योजनों, कार्यों तथा अनुभवों से है।''

मनोविज्ञान आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यवहारों का निरीक्षण करता है। आंतरिक एवं वैयक्तिक क्रियाओं की बाह्य अभिव्यक्ति व्यवहार में सन्निविष्ट रहती है। इस प्रकार के व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन को मनोविज्ञान कहा जाता है। मनोविज्ञान को परिवर्तित परिभाषा के एकरूप का वर्णन मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—''सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा खोई, उसके बाद मन का परित्याग किया और फिर चेतना खोई, किंतु इसमें व्यवहार का अध्ययन आज भी वर्तमान है।''

किंतु ड्रेवर ने उसकी परिभाषा करते हुए कहा—''मनोविज्ञान वह शुद्ध विज्ञान है, जो मानव तथा पशु के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जो व्यवहार के अंतर्गत मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति करता है, जिसे हम मानसिक जगत् कहते हैं।''

वास्तव में व्यवहार जीव की संघर्षपूर्ण संस्थितियों के प्रति मानव तथा पशु की संपूर्ण संक्रिया है, जिसका विशिष्ट तरीके से मानव में ही संभव है। व्यवहार का अर्थ है मानव के बाह्य और आंतरिक उत्तेजकों को समाविष्ट करना ड्रेवर की परिभाषा सटीक है, क्योंकि मानव और पशु के व्यवहार में कुछ समानता होती है। किंतु मानव का विवेक और बुद्धि ही उसे पशु से भिन्न रखती है, जैसा कहा गया है—'आहारनिन्द्रामय मैथुनश्च सामान्य मेतद पशुभि:नराणाम्।'

मन को पदार्थ मानकर कार्य-कारण की शृंखला से आबद्ध कर प्रयोगशाला पद्धति पर उसके स्वरूप का निर्णय होने लगा है। अत: मन की समस्या को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, जिनका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है। उनके सूक्ष्म भेदों और प्रभेदों से हमारा अभिप्रेत नहीं है। हम तो केवल यौन-मनोविज्ञान के कामात्मक सिद्धांतों का ही विवेचन करें, जिनका कला और साहित्य पर विशिष्ट एवं गहन प्रभाव पड़ा है।

मनोविज्ञान और यौन-मनोविज्ञान—मनोविज्ञान और यौन-मनोविज्ञान का अत्यंत घनिष्ठ एवं अंतरंग संबंध है। मानसिक संचेतना समान रूप से तरंगित होती है, जो मनोभावों अनुभूतियों तथा जनांगिक उत्तेजनों की जननी है। चेतना के विभिन्न स्तरों का विश्लेषण, फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया है। इनमें मानसिक संस्थियों का व्यक्तीकरण मात्र शब्दों में नहीं, बिंब एवं प्रतीकों में होता है। मन का विश्लेषण, प्रत्यावलोकन, पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली का सहारा लिया है। यौन-मनोविज्ञान मानसिक चेतना की धारावाहिक प्रक्रिया है, जिसमें नर-नारी के जननांगिक आवेगों-संवेगों तथा उत्तेजना का अध्ययन किया जाता है, जो साहित्य संगीत तथा कला के क्षेत्र को प्रभावित करता है। अत: यौन-मनोविज्ञान के अध्ययन और अनुशीलन के लिए शरीर विज्ञान और प्राणी संबंधी रासायनिक विज्ञान के दोनों क्षेत्रों की गवेषणाओं का सामान्य ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि स्नायु-प्रणाली से शारीरिक प्रक्रियाओं का संचालन होता है।

1. शरीर रचना—मनोविज्ञान और यौन-मनोविज्ञान का शरीर रचना से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। शरीर का स्नायुमंडल अप्रत्यक्ष रूप से इनको प्रभावित करता है। शरीर रचना में शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट, आकार,

रूप-रंग आदि का वर्णन किया जाता है। स्नायु-मंडल आंतरिक संरचना की स्थिति को प्रदर्शित करता है, जिनका सापेक्ष संबंध स्वास्थ्य-व्यवहार और शरीर संरचना से है। यदि नर-नारी की शरीर-रचना, जननांगिक अवयव एवं स्वास्थ्य ठीक है तो उसमें यौन उत्तेजना और समागम की मनोभूमि तैयार होगी।

2. शरीर-रसायन—मानव-शरीर में कई प्रकार की रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं। जिनसे लैंगिक प्रणाली प्रभावित होती है। लैंगड्न ब्राउन के अनुसार, ''हम कह सकते हैं कि क्षरण-प्रणाली उन आदिम रासायनिक

यंत्रों का विस्तार है, जो स्नायु-प्रणाली के विकसित होने से पहले प्राणियों में क्रियाशील थे।''

शरीर के क्षरण-द्रव्य के नियमन की आदिमता का महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। हमारा उद्देश्य अनेक क्षरण ग्रंथियों का सामंजस्ययुक्त समन्वय करना है।

3. नलिका विहीन ग्रंथियाँ—जिन ग्रंथियों के क्षरण या निर्यास, जिन्हें हार्मोन कहते हैं जो बिना किसी नली के रक्त में पहुँचती हैं, उन्हें नलिकाविहीन ग्रंथियाँ कहते हैं और यही ग्रंथियाँ कामांणो को उत्तेजित और नियमित करती हैं।

1. पेंक्रियास ग्रंथि—यह ग्रंथि पाचक रस का स्राव करती है, जिससे पाचन शक्ति प्रभावित होती है। इस ग्रंथि की कोशिकाओं से रक्त में इंसुलिन द्रव का स्राव होता है, जिसके अधिक या अल्प स्राव से डायबिटीज का रोग हो जाता है। इसका प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक मानसिक एवं जननांगिक स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिससे नर-नारी के स्वभाव पर भी गहन प्रभाव पड़ता है।

2. थाइराइड ग्रंथि—इस ग्रंथि से थाइरोक्सिन नामक द्रव का स्राव होता है। जिसकी अधिकता से लंबाई और अल्पता से बौनापन होता है। इतना ही नहीं अशांत, चिंता, उत्तेजना के साथ ही विस्मृति, थकावट तथा मानसिक दुर्बलता लक्षित होती है। इस ग्रंथि को प्रजनन ग्रंथि भी कहते हैं। इससे सभी प्रकार की सृजनात्मकता एवं कलात्मकता पर भी प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक इसके निर्यास को संश्लेषणात्मक ढंग से तैयार कर सकते हैं।

3. पैरा थाइराइड ग्रंथि—इसके असामान्य निर्यास से शरीर में कैल्सियम की कमी हो जाती है, जिसका प्रभाव मानव के संवेगात्मक व्यवहार पर पड़ता है। यह मांस-पेशियों को भी प्रभावित करता है। इसे प्रजनन ग्रंथि की संज्ञा दी गई है।

4. पिट्यूइटरी ग्रंथि—इससे निकलनेवाला हार्मोन या निर्यास विभिन्न अत: स्रावी ग्रंथियों का नियमन करता है। इस ग्रंथि का प्रभाव व्यक्ति के हृदय, धमनियों, जननांगों तथा वृद्धि और विकास पर पड़ता है। यह नर-नारी के कद को प्रभावित करता है। इसके निर्यास की कमी से व्यक्ति छोटा और डरपोक हो जाता है। इस ग्रंथि को क्षरण-संबंधी वाद्यवृंद के निदेश की संज्ञा दी जाती है। प्राचीन शरीर-विज्ञानी इसको लघु मस्तिष्क समझते थे। यहाँ हार्वे कुशिंग का कथन दर्शनीय है—''यहाँ अच्छी तरह छिपे हुए स्थान में आदिम जीवन-क्रम का प्रधान स्रोत अवस्थित है। वह जीवन-क्रम जो बर्धक, भावुक और प्रजनक है, पर मनुष्य थोड़ी बहुत सफलता के साथ विधि-निषेधों को अंतस्वचिका चढ़ा दी है।'' इवांस और सिंपसन ने उसके कोशों के वृद्धि और यौन विकास संबंधों का आविष्कार किया है। सहानुभूतिशील प्रणाली पिट्यूइटरी, थाइराइड और एड्रीनल से संबंधित है।

5. एड्रीनल ग्रंथि—यह यौनांगों को संतुलित करने और उसकी स्थिति को पूर्ण समायोजित स्वरूप को प्रदान करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके हार्मोन की अल्पता से शारीरिक बनावट और यौन-शक्ति में परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण व्यक्ति थकावट, चिड़चिड़ापन और दुर्बलता का शिकार हो जाता है। इसके स्राव की अधिकता से स्त्रियों में पुरुष जैसे लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। यौनांगों का समायोजन संतुलित नहीं हो पाता।

6. प्रजनन ग्रंथियाँ—प्रजनन जीवधारियों की चिरंतन, आदिम तथा महत्त्वपूर्ण क्रिया है। प्रकृति ने जननांगों की

अद्‌भुत सृष्टि की है, जिससे प्राणी अपने जैसे प्राणियों को जन्म देकर सृष्टि-क्रम को बनाए रखते हैं। नर-नारी के जननांगों में प्रत्यक्ष भिन्नता दिखाई देती है। पुरुष के बाह्य अंग शिश्न और वृषण और नारी के योनिमुख, भगोष्ठ तथा भगांकुर भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन जननांगों के स्पर्श एवं अवलोकन से मानव के मनोलोक में हलचल होने लगती है, जिसके परिणामत: उत्तेजना, मनोवेग एवं भाव संभूल होते हैं। मानव के निस्तरंग अंगों में वासना तरंगित होकर आँखों में निसृत होकर अधरों के तटों से टकराती, स्तनों के उन्नत शिखरों पर ठहरती उनके मध्य की से बहती, नाभि के निकट के भँवरों को समेटती सहवास के संगम में विलीन हो जाती है। यही तो यौन-मनोविज्ञान का उत्स है।

यौन-मनोविश्लेषण—आधुनिक युग में चाल्स डारविन के उत्क्रांति के सिद्‌धांत के प्रचार और विज्ञान के नूतन आविष्कारों के कारण मानव के चिंतन प्रवाह में विस्मयकारी प्रगतिशीलता आई है, जिससे जीवन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रति वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उन्होंने मन तथा उसकी शक्तियों का अध्ययन और अनुशीलन प्रारंभ किया है। मनोविश्लेषण के प्रवर्तक थे फ्रायड, उन्होंने मानसिक धरातल पर चेतना के विविध स्तरों पर क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके अनुसार चेतना के तीन स्तर हैं—चेतन, अवचेतन और अचेतन। चेतन ज्ञान का प्रमुख केंद्र है और अवचेतन चेतन के परिकार में आता है। अचेतन मन पर ही फ्रायड का कामात्मक प्रत्यय तथा मनोविश्लेषण सिद्‌धांत का प्रतिपादन हुआ है। व्यक्ति की वासनाएँ, भावनाएँ तथा स्मृतियाँ अचेतन मन में जाकर सो जाती हैं और चेतन के जगाने पर अँगड़ाई लेकर उठती हैं और मानव की व्यावहारिक क्रियाओं और यौनिक संक्रियाओं को भी संचालित करती हैं।

युंग ने मन की तुलना सागर से की है और ज्ञात मन को एक द्‌वीप के समान बताया है। फ्रायड ने इसे एक बड़ा आइसवर्ग कहा है। फ्रायड और युंग के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि फ्रायड का प्रत्येक दृष्टिकोण काम से संबंधित है।

मूल प्रवृत्तियाँ—फ्रायड के अनुसार, मानव के व्यवहार के निर्धारण में मूल प्रवृत्तियों का अत्यंत महत्त्व है। मन के संचालन में मूल-प्रवृत्तियों की अहम भूमिका रहती है। फ्रायड ने दो प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ स्वीकार की हैं—जीवन-प्रवृत्ति तथा मृत्यु-प्रवृत्ति। जिजीविषा मानव की अति विशिष्ट प्रवृत्ति है, किंतु उससे कम उसमें निर्वाण की कामना निहित रहती है। जितने भी लड़ाई-झगड़े, वाद-विवाद तथा विध्वंस और विघटन के कार्य होते हैं, वे सभी इसी वृत्ति के कारण होते हैं। फ्रायड ने इस मरण-सिद्‌धांत को विकसित करते हुए कहा कि मरने की प्रवृत्ति मारने में परिणत हो जाती है। इस आधार पर उन्होंने मैथुन सक्रिय या रतिक्रिया को दो रूपों में स्वीकार किया है—स्वपीडऩ रति और परपीडऩ रति। किंतु एडलर ने इसका विरोध किया है और आत्मगौरव को भी अभिप्रेरक माना है।

''काग्नेहार्ने ने इसे अचेतनात्मक अभिप्रेरणा स्वीकार किया है। यह मनोविश्लेषण सामान्य अवधारणाओं में से एक है।'' किंतु उसने फ्रायड के मनोविश्लेषण के नियमों को अस्वीकार करते हुए सुरक्षा और संतोष के सिद्‌धांत को प्रतिपादित किया है।

मनोशक्ति—अचेतन मन समस्त मूल आवेगों और संवेगों को संकलित करता है उनमें जननांगिक उत्तेजन और मनोवेगों को समाहित कर सकते हैं। फ्रायड के अनुसार मनोशक्ति और यौन-मनोशक्ति काम-वृत्ति से उद्‌भूत होती है, जो जीवन की सभी मूल प्रवृत्तियों की संचालक शक्ति कही जाती है। वासना परितुष्टि लिए मैथुनिक संक्रिया इसी से संपादित होती है। फ्रायड ने काम-वृत्ति को क्रमश: बचपन से ही विकास स्वीकार किया है, यह मुखेण, गुदेण, फैलिक लैटेंट एवं जैनिटल अवस्था में क्रमश: विकसित होती है। सामान्यत: प्रत्येक बालक और बालिकाओं को इस अवस्था से गुजरना पड़ता है, उनके नन्हे मानस में काम-शक्ति अपने माता-पिता में केंद्रित होने

लगती है, किंतु यह समाज में वर्जनीय है अत: बालक में मातृशक्तिग्रंथि (इडिप्स कंम्पलैक्स तथा बालिका में पितृशक्ति ग्रंथि (इलैक्ट्रा कंम्प्लैक्स) का जन्म हो जाता है, जिससे भविष्य में समस्त मानव क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। फ्रायड ने मन के तीन भागों का उद्‌घाटन किया है—

1. इदम- यह अचेतन और जन्मजात होता है। यह स्वतंत्र और उन्मुक्त होता है तथा अपनी दमित वासनाओं तथा इच्छाओं को शीघ्र परितुष्ट करना चाहता है। यह सामाजिक नियमों, प्रतिबंधों तथा वर्जनाओं को अस्वीकार करता है। यह सुख-लिप्सा से भावित होकर सदैव कामवासना की संतुष्टि से सजग रहता है। अधिकांशत: इसकी इच्छाएँ कामात्मक होती हैं। इदम का व्यक्तीकरण शिशु व्यवहार और रोमांच की अवस्था में भी मिलता है। यह कालातीत शक्ति का स्रोत है।

2 अहं- अहं चेतन का विकास होता है। यह सभी प्राणियों में अविभाज्य एवं आदिम रूप से समाहित है। इसका यथार्थता से गहरा संबंध होता है। इसका प्रत्यक्षीकरण निर्माण होता है। यह व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार को नियमित करता है। अहं मन का प्रमुख शासक कहा गया है और यह दमित भावनाओं को चेतन में आने से रोकता है। अवसर मिलने पर व्यक्ति समस्त वर्जनाओं और नैतिकता को त्यागकर अनैतिक और असामाजिक कार्य भी कर लेता है।

3. पराहम- फ्रायड ने इसे नैतिक अहं की संज्ञा दी है। सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म से घनिष्ठ संबंध है। बाल्यकाल से ही समाज के आदर्श और माता-पिता के प्रभाव से प्राप्त अनुभूतियाँ इसकी संरचना करती है। पराहम के कारण ही व्यक्ति में पछतावा आदि मनोभावों का जन्म होता है। इसी से समस्त क्रियाओं की आलोचना नैतिकता के आधार पर की जाती है। इसका नियंत्रण इदम और अहं पर रहता है। पराहम के कारण ही व्यक्ति के आंतरिक जगत् में अपराध-भाव का निर्माण होता है। उसे अपनी मातृ-पितृ कामेच्छा के बारे में ज्ञान नहीं हो पाता। पराहम इदम और अहं का परस्पर समायोजन करता है। कहने का तात्पर्य है कि इदम शारीरिक है और सुख के सिद्‌धांत पर आधारित है। अहं मनोवैज्ञानिक होकर वास्तविकता का परीक्षण करता है और पराहम सामाजिकता और भौतिकता के आधार पर विकसित होकर पूर्णता की प्राप्ति करता है। समाज में इसी से उत्तम नैतिक गुणों का विकास होता है।

अचेतन मन की कार्यपद्‌धति—भारतीय दर्शन के आधार पर मन की चार अवस्थाओं का उल्लेख हुआ है—सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् एवं तुरीय। सुषुप्ति अचेतन मन का स्तर है जो अव्यक्त है, अपरिमेय है। अरस्तु, प्लेटो तथा डेकार्ट आदि विद्‌वानों ने भी इसपर विचार-विमर्श किया है। यहाँ पर विस्तार भय के कारण अचेतन मन की कार्य-पद्‌धतियों पर संक्षिप्त रूप में ही प्रकाश डालेंगे।

1. प्रत्यावर्तन—यह एक अचेतन विधि है, जिसके अनुसार आगे बढ़ी हुई कामशक्ति सामाजिक वर्जना के कारण अपनी पूर्वावस्था में प्रत्यावर्तित हो जाती है तथा कल्पना सत्ता की ओर मुड़ जाती है, जैसे माता-पिता के प्रेम व्यापार की कल्पना तरंग। अवरुद्‌ध कामवासनाएँ कई प्रकार की मनोविकृतियाँ उत्पन करती हैं। जीवन संघर्ष के पंथ को छोडक़र व्यक्ति शैशव की सुरक्षात्मक जीवन-शैली अपनाता है। युंग के अनुसार जीवन की कठिनाइयों, मानसिक समस्याओं एवं कुंठा की वेदना से पलायन करने का एक अचेतन प्रयास करता है। प्रारंभ में बच्चे को अपनी आवश्यकता की परिपूर्ति के लिए अपनी माँ का ध्यान आकृष्ट करने के लिए रोना-चिल्लाना पड़ता है। कुछ बच्चों में यह आदत बड़ी उम्र तक चलती रहती है। मानसिक मनोव्यापारों में प्रत्यावर्तन प्रत्येक स्थान पर मिलता है। ज्वर से पीड़ित होने पर डॉक्टर के मना करने पर भी रोटी के लिए लालायित होकर रोटी माँगते हैं।

2. दमन—दमन संक्रिया को फ्रायड ने मनोविश्लेषण का आधार माना है। व्यक्ति की दमित इच्छाएँ वासनाओं तथा चेतन से हटकर अचेतन में चली जाती हैं और स्वरूप बदलकर व्यवहार में अभिव्यक्त होती है, जैसे

आकस्मिक भूलें, स्वप्न मनोग्रंथि आदि। भावनाएँ चेतन से अचेतन में डाल दी जाती हैं। अत: मानसिक कष्ट से बचने के लिए व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों का दमन करता है। किंतु विचार अचेतन रूप में सदैव सक्रिय रहते हैं।

3. औचित्य स्थापन—अपने असगंत व्यवहार तथा असफल क्रियाओं का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण, अपराधभाव या हीनभाव से बचने का यह एक अचेतन प्रयास है। जब व्यक्ति अपनी वासनाओं को परितुष्ट नहीं कर पाता तो उसके मन में अंतद्र्वंद्व उत्पन्न हो जाता है तो वह अनेक तरीकों से मन को सांत्वना देता है, जैसे परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर यह कहता है चलो अच्छा हुआ क्या नौकरी करनी है। इस प्रकार औचित्य स्थापन करके अपने आपको धोखा देता है। दु:ख स्थिति को भी सुखद बताने की चेष्टा करता है। व्यक्ति अपनी रक्षा स्वयं करके मानसिक विकृतियों से बच जाता है।

4. विस्थापन—दमित वासनाओं और इच्छाओं के व्यक्तिकरण का एक साधन हैं, इसमें मनोशक्ति द्वारा एक विषय-विकार से हटाकर दूसरे विषय-विकार आवश्यक प्रतीत होते हैं और आवश्यक विषम अनावश्यक। फ्रायड के विचार से विस्थापन का उद्देश्य कामात्मक इच्छाओं के ऐसे विषय-विचार पर स्थिर करना है। जहाँ चेतन को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती। जैसे किसी युवती के पति की मृत्यु के बाद वह किसी पर पुरुष से प्रेम न करके बच्चे में मन रमाती है। यही काम शक्ति का उस दिशा में मुडऩा है, जो समाज में वांछनीय है।

5. प्रक्षेपण—व्यक्ति अपनी निषेधित वर्जित एवं अव्यक्त वासनाओं और इच्छाओं को अपने-आप में देखकर दूसरे व्यक्तियों को देखता है तो प्रक्षेपण कहते हैं, जैसे परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर विद्यार्थी अध्यापकों और परिवार की व्यवस्था को दोषी ठहराता है। यह प्रक्रिया अपने आपको अपराध-भावना, मानसिक द्वंद्व की वेदना से बचने का एक अचेतन प्रयास है। नौकरी न मिलने पर सिफारिश और भाग्य का साथ न देने का दोष देता है। इसी से आत्मिक शांति मिलती है। यह अचेत मन की आत्मरक्षार्थ क्रिया है। हम अपने अपराध, दोष तथा असफलता को दूसरे पर थोपते हैं और अपने आपको सुरक्षित कर लेते है।

6. तादात्म्य—इस शब्द का अर्थ है दो या दो से अधिक वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाओं में प्रत्येक प्रकार की समानता होना। किसी लडक़ी को देखकर व्यक्ति सोचने लगता है कि यह हमारी रेखा से मिलती-जुलती है। यह संवेगात्मक संबंध मनोग्रंथि के कारण होता है। इसमें किसी प्राणी या पदार्थ से भावात्मक निकटता होती हैं, संतान की उपलब्धि को माता-पिता अपनी उपलब्धि मानते हैं इतना ही क्यों, बेटा-बेटी की हार-जीत को अपनी हार-जीत मानते हैं। यह पराहम की संचेतना है। वास्तव में तादात्म्य एक प्रकार की आदत है, जो संतुलन विधि है।

7. उदात्तीकरण—इसका अर्थ है कला, साहित्य एवं प्रकृति का आदर्शरूप। यह अचेतन मन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मन की दमित काम-वासनाएँ और इच्छाएँ आदर्श की नूतन चादर ओढक़र निकलती हैं। यह प्रकृत मूल वासना को सत्पथ की ओर परिवर्तित कर देती है। उदात्तीकरण समाजनुमोदित नैतिक धारणा हैं, यह कला-प्रेम, देश-प्रेम, पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम, ईश्वर में आस्था एवं प्रेम तथा मानवीय लैंगिक प्रेम को अभिव्यक्त करता है।

8. प्रतीकीकरण—इस कार्य पद्धति में अचेतन मन की दमित वासनाएँ प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्त होती है। इंडोसाइकिक सेंसर से बचने के लिए कामवासना द्योतक प्रतीकों का प्रयोग अचेतन मन द्वारा किया जाता है। यह कार्य-पद्धति कल्पना-लोक में विहरती है जो अधूरी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। वर्डर्नझर्ट ने कहा है—

''वास्तविक मूल विकास को छिपाना ही प्रतीकीकरण का उद्देश्य होता है'' विशेष प्रकार की चाल-ढाल। कपड़े, पांडित्यपूर्ण कठिन शब्दों का प्रयोग। बातचीत करने की कला। आडंबरपूर्ण व्यवहार के सार्थक उदाहरण हैं। डॉ. फ्रायड के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति की कामवासना तथा उससे संबद्ध कार्य-कलाप प्रतीकीकरण को इंगित

करते हैं। ये प्रतीक स्वप्न, धर्म-पुराण गाथाओं, कला-साहित्य तथा विक्षिप्तावस्था में प्रतिबिंबित होते हैं, माता-पिता जन्म-मरण, आधुनिक सक्रियता और जननांग इसी के परिकर में आते हैं।

9. क्षतिपूर्ति—किसी मानसिक क्षति के लिए दूसरी मानसिक क्रियाओं द्वारा की जाती है। यह समायोजनात्मक प्रवृत्ति है। मनुष्य अपनी इच्छाओं में असफलताएँ तथा हीनता आने पर उन्हें अन्य संतोषजनक स्थिति के साथ चेतना के रूप में पूर्ण करता है, यह लाभदायक और हानिकरक भी हो सकती है।

10. कला की मूल प्रेरणा—डॉ. फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के अचेतन मन की दमित वासना कलाकार की कल्पना का आधार होती है। कवि बालक के समान मन: सृष्टि करता है और उसे गंभीरता पूर्वक स्वीकार करता है। पीड़ा से रक्षा करने पर अन्य उपाय मानसिक साधनों के अनुसार राग-विषयक की क्रिया है। जिसके द्वारा परिवर्तनशीलता प्रचुर अंशों में उपलब्ध होती है। वास्तव में कला दमित काम-वासनाओं का उदात्तीकरण है। एडलर अचेतन मन की दमित काम वासनाओं को कला की मूल प्रेरणा नहीं स्वीकार करता है। वह उसके अनुसार —''कला के मूल में क्षतिपूत का सिद्धांत कार्य करता है। उनका स्थायी लक्ष्य शारीरिक असमर्थताओं तथा अन्य कारणों से शैशव में हीन ग्रंथ के कारण उत्पन्न हो जाती है। उसका निराकरण अपनी महत्ता प्रकट करने का प्रयास करता है। साहित्य और कला इसी प्रकार की हीनता के भावों की क्षति-पूर्ति के साधन हैं।'' किंतु युंग का कथन है, ''सृष्टिकृत कलाकार की आत्मा में एक प्राकृतिक शक्ति होती है, जो शक्ति कुशल सूक्ष्मता से अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए रचनात्मक आवेग के वाहक सुख-दु:ख से निरपेक्ष होकर करती है। मनुष्य में रचनात्मक आवेग मनुष्य के भीतर उसी प्रकार रहता है और विकसित होता है।'' इस अध्ययन से सात विदित होता है कि फ्रायड तथा एडलर के मतों से युंग का मत तर्क संगत लगता है। यौन मनोविश्लेषण वर्तमान युग की माँग है, क्योंकि जीवन के मूल्य में ह्रास होने लगा है। अचेतन मन में ध्यान, आकर्षण, एकांत प्रियता अस्वीकृत मनोविच्छेद, निराधार कल्पना आदि अचेत मन की सक्रिय है।

काम शक्ति का सिद्धांत—मानव में अनेक शक्तियाँ वृत्तियों में सन्निहित हैं। यह शक्ति दो प्रकार की है—(1) भौतिक कार्यों को स्पष्ट करनेवाली (2) अंत:करण की क्रियाओं में अभिव्यक्त होनेवाली। व्यक्ति का जीवन आंतरिक और बाह्य शक्तियों का परस्पर द्वंद्व का क्षेत्र है। मानसिक स्वरूप क्या है? यह बताना अत्यंत जटिल है। इस विषय में विद्वानों में मत-भिन्नता है। यहाँ केवल फ्रायड के मत पर विचार किया जाएगा। काम सूत्र के अनुसार काम एक प्रकार की विशिष्ट आनंदानुभूति है, जो ज्ञानेंद्रियों, स्पर्श, घ्राण, दृष्टि, श्रवण तथा स्वाद से संभूत होती है, जिसका संबंध मानसिक एवं आत्मिक होता है।

काम सूत्र 11.13—इस संदर्भ में वात्सायन की धारणा है कि रतिक्रिया मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार भोजन, धर्म, अर्थ और काम का संतुलन सर्वथा वांछनीय है।

फ्रायड के अनुसार कामवासना का संबंध किसी भी प्राणी या वस्तु से हो सकता है। यौन-मनोविश्लेषकों ने 'लिबिडो' शब्द का अर्थ भी कामशक्ति के रूप में किया है, क्योंकि कामशक्ति मनोलोक तथा अंतश्चेतना का जीवन है, इस पर सभी प्रकार के मानवीय व्यवहार समाधारित रहते हैं। जब इसका दमन किया जाता है, तब व्यक्ति में विविध प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। किंतु इसके विकास तथा उत्थान से कथा-साहित्य एवं धर्म उद्भूत होता है। कामशक्ति के विकास की तीन अवस्थाएँ हैं। 1. स्वरति अवस्था, 2. आत्म रति अवस्था, 3. बाह्य स्तुति। कामशक्ति का संतरण इस प्रकार होता है। प्रत्यावर्तन, केंद्रयण, प्रतिबंधन, दिशांतरण तथा बर्हिमुख और अंतर्मुख। भारतीय साहित्य में उसे तीव्र, काम भाव उत्पन्न करना, उत्कंठा, लोभ आदि जनक कहा है काम मन की उन्मत्त हिलोर और हृदय का स्पंदन है।

फ्रायड महोदय ने माता-पिता का प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, मित्र का प्रेम तथा देश भक्ति और गुरु भक्ति को काम शक्ति में समाविष्ट किया है। इसके अतिरिक्त वात्सल्य विश्वमैत्री को भी इसी के अंतर्गत माना है। नर-नारी का वासनागत संप्रयोग है। हमारे भारतीय साहित्य में पितृषणा, दारेषणा तथा लोकेष्णा को वासना में अभिनिविष्ट किया है। धर्म, स्त्री और प्रतिष्ठा सभी आनंददायक होते हैं। मैथुनिक आनंद सार्वभौमिक है। आनंद जीवन का उद्‌गम है—''आनंदमखल्लिविभानि भूतानि जायंते।'' नर-नारी का सहवास विश्ववासना है। किंतु एडलर काम-वासना को आदि-वासना नहीं मानता हैं। हाँ दारैषणा को प्रधानता देता है। योन मनोविश्लेषक युंग ने कामशक्ति को रचनात्मक प्रकृति कहा है। लिविडो को जीवन-शक्ति की भी संज्ञा दी जा सकती है। प्लेटो ने भावों, मनोवेगों तथा प्रजनन नामक मूल प्रकृति को इसी में समाहित किया है।

1. मनोयौनिक विकास—यह प्रक्रिया जन्मजात होती है, क्रमश: बढ़ती है। मुखेण स्थिति में शिशु स्तनपान तथा अँगूठा चूसकर तथा दाँत से काटना यौन-सुख अनुभव करता है। यह संक्रिया आठवें महीने से अठारहवें महीने तक चलती है।

2. गुदेणस्थिति—इस अवस्था में गुदा-व्यापार से यौन सुख मिलता है। इस स्थिति में मल-मूत्र को त्यागकर, रोकर यौनानंद प्राप्त करता है।

3. लैंगिक प्रधानता—यह स्थिति तीन साल से लेकर छह साल तक रहती है; जननांगों में अति संवेदनशीलता हो जाती है और उसमें आनंद लेने लगता है। बालकों में हस्तमैथुन और बालिकाओं में शिश्न के प्रति ईष्या होने लगती है। इसी अवस्था मैं मातृ कामशक्ति और पितृ कामशक्ति का उद्‌भव होता है तथा प्रजनांगिक इंद्रियों से खेलना प्रारंभ कर देता है।

4. सुप्तावस्था—छह-सात साल की आयु से लेकर नौ-दस साल की आयु को मनोविश्लेषक सुप्तावस्था मानते हैं। इस आयु में बालक-बालिकाओं की लैंगिक इच्छाएँ प्रसुप्त रहती है। वे खेलने-कूदने, दौडऩे-भागने में ही रुचि लेते हैं। इसी उम्र में दमित वासनाओं का उदात्तीकरण हो जाता है। जिससे उनमें संगीत, साहित्य, कला तथा नृत्य आदि क्रियाओं में अभिरुचि हो जाती है।

5. जननांगिक अवस्था—इस अवस्था में जवानी अँगड़ाई लेने लगती है, यह 11-12 साल की उम्र से 14-15 साल तक रहती है। पूर्ण यौवनावस्था है, जिसमें बालक-बालिकाएँ अपनी योनि के साथ खेलते हैं। शारीरिक एवं मानसिक आवेगों में कल्पना की अधिकता, लैंगिक उत्तेजना, हस्तमैथुन की प्रवृत्ति, प्रेम, भावुकता तथा लैंगिक अगों में रुचि लेने लगते हैं।

6. यौन मनोभाव—इस अवस्था में बालक माता का स्तनपान करता है। फ्रायड के मतानुसार प्रेम काम-संवेग का मानसिक प्रतिनिधि है। माँ शिशु को चूमती है, दुलारती है तथा थपथपाती है, इन संक्रियाओं से शिशु को प्रेम का प्रोत्साहन मिलता है। प्रथमत: शिशु अपने से ही प्रेम करता है फिर अपनी माँ को प्रेम करता है और पिता से ईष्या माता के पास के अधिक निकट रहने में भाई-बहनों का झगड़ा भी होता है। जब माँ कपड़े बदलती है, तब उसे देखना चाहता है। माँ के प्रति यह अनुरक्ति-चेतना के स्तर पर नहीं आ पाती; दमित होकर अवचेतन में समाहित हो जाती है।

मातृ-पितृ काम शक्ति की ग्रंथियाँ इडीप्स तथा इलैक्ट्रा में विकसित हो जाती है। बालक माँ से प्रेम करने लगता है और लडक़ी पिता के प्रति अनुरक्त हो जाती है।

स्वप्न—यह एक मानसिक संक्रिया है। स्वप्न का अर्थ अपने आप में रमण करना। व्यक्ति की दमित वासनाएँ अचेतन मन में स्थित हो जाती है। वही निद्रावस्था, स्वप्नों में उभरती है, जिससे दमित वासनाओं की परिपूर्ति होती है

तथा काल्पनिक रूप से परितोष मिलता है। स्वप्न निंद्रा के रूप में जीवन है, जो काल्पनिक एवं अस्थिर होता है। केवल ज्ञानेंद्रियाँ स्वप्न में विचरण करती है। स्वप्नों में दैनिक जीवन की संक्रिया प्रतीक रूप में तथा विभ्रात्मक रूप में मानस में रमण करती हैं। इस स्थिति में सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद घृणा तथा भय आदि मनोभाव से संचरित होते हैं।

यहाँ यौन मनोविज्ञान का सामान्य परिचय ही अपेक्षित है। उसकी गहराइयों को अभिव्यक्त करना अवांछित है।

❑

यौन मनोविश्लेषण के सिंद्धात और प्रतिमान

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति सुखमय एवं आनंदमय जीवन जीने की नैसर्गिक आकांक्षा रखता है, क्योंकि सभी प्राणी आनंद की कोख से उत्पन्न हैं। अत: वे आनंद में ही जीवित रहते हैं—'आनंदेन जीवंति।' इस आनंद की संप्राप्ति के लिए मनुष्य सतत प्रयत्नशील रहता है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं उनमें काम की अहम भूमिका रहती है, क्योंकि वह सृष्टि का मूलाधार है। प्रेम, वात्सल्य, करुणा, उदारता आदि मनोविकारों, संवेगों तथा उत्तेजकों का प्रकाश-स्तंभ, मैथुनिक एवं सहवास का विस्मयकारी उत्स है। यौन आचरण को स्फुरित, उत्तेजित तथा नर-नारी के मिलन के नियमों के व्यवहारों, शारीरिक व्यापारों, मैथुनिक संतृप्ति के विचारों तथा उपायों को सिद्धांतों की संज्ञा दे सकते हैं।

काम जीवन की सनातन संचेतना है, प्रीति की रीति है और संवेगात्मक आत्मा। वात्सायन के अनुसार जीने की कला है। फ्रायड ने काम को मानव की जिजीविषा कहा है, उसकी संतृप्ति के बिना शरीर और मस्तिष्क में अनेक रोग हो जाते हैं। युंग और एडलर कामानुभूति की उपेक्षा नहीं कर सके, क्योंकि प्रेम क्रीड़ा एक जीव-वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह मानसिक कामशक्ति है, जो वग्सिां के प्राणिक स्फूर्ति से मिलती-जुलती है, जो मैथुनिक आनंद की विकृति है। डॉ. कैथराइन डेविस का कथन है कि मैथुनिक आनंद से असंतुष्ट नर-नारी तलाक देकर सामाजिक संतुलन में व्यवधान डालते हैं। हैमिल्टन के अनुसार वैवाहिक जीवन में व्यवधान नर-नारी का यौनिक अनुपयुक्त असामंजस्य है। दबाव से नव वैवाहिक संबंध यौनिक कष्टों से तलाक की ओर उम्मुख होते हैं। क्योंकि अधिकांश युवक और युवतियों को यौन परितुष्टि की प्रविधि या तकनीक का बोध नहीं होता है। सफल दाम्पत्य जीवन के लिए सांभोगिक परितृष्टि सर्वथा वांछनीय है।

काम प्रेम की कला है, जो नर-नारी में आनंदानुभूति संपादित करती है। अलौकिक आनंद की विधायिनी है, सहवासिक क्षरण की चरम परणति, सरस और मधुसिक्त। इसे 'रसो वै: स:' अथवा रस सार: चिदानंद प्रकाश कहकर आचार्यों ने व्यक्त किया, जो लोकगीतों तथा लोकसंगीत में भी मधुमान हो उठता है और लोक जीवन को सरसित कर देता है। हैनरिकजिनपर ने कहा—''काम जादू का मादकत्व है और जादू प्रेम का निश्च्योत है। जिसमें प्रकृति का अपना सम्मोहन और सौंदर्य है, जो प्रेम और यौन को उत्प्रेरित करता है यह जादू-टोना है, जो एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी के लिए बाध्य करता है। यह ऐसा वशीकरण है, जो समस्त प्राणियों को अस्तित्व के चक्र से संबद्ध करता है।''

यौन मनोविज्ञान को कामशक्ति के क्रियान्वयन में अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। यहाँ उनका सामान्य परिचय ही दे सकेंगे, यही हमारा अभिप्रेत है क्योंकि विस्तार बढ़ाना निष्प्रयोज्य है।

1. निर्वाचनवाद—यह डार्विन के विकासवादी सिद्धांत का मौलिक रूप है। नर-नारी अपने मनोनुकूल साथिन और साथी निर्वाचित करने के लिए मन में एक काल्पनिक चित्र बना लेते हैं। उसी के अनुरूप साथिन और साथी चाहते हैं। अकल्पित नारी के प्रति पुरुष यौनिक संबंध सरलता से नहीं बनाना चाहता, किंतु नारी सौंदर्य नहीं देखना चाहती है, वह प्राय: सबल स्वस्थ तथा कर्मशील व्यक्ति को चुनना चाहती है, क्योंकि वह उसका और बच्चों का परिपोषण कर सकता है। पुरुष नारी के सौंदर्य के साथ उसके शारीरिक गठन से प्रभावित होता है। नारी के उन्नत पयोधर औरा प्रथुल और पुष्ट नितंब पसंद करता है, क्योंकि वह गर्भधारण में सक्षम होती है। आनुवांशिक धारणा से आनेवाली पीढ़ी उन्नत और श्रेष्ठ हो सके। मोल का कथन है कि भिन्न लिंग व्यक्ति का मन पर भौतिक एवं मानसिक प्रभाव पड़ता है उसे पूर्वराग की संज्ञा दी जा सकती है, उससे निर्वाचन का मार्ग प्रशस्त होता है। यौन-

मनोवैज्ञानिक हैमान ने स्पष्ट और सटीक शब्दों में कहा है—''यदि पुरुष यह चाहते हैं कि स्त्रियाँ अब से लंबी और कम भावुक हो तो बहुत सी लंबी और कम भावुक स्त्रियाँ वर्तमान में हैं, जिन्हें विवाह के लिए चुन सकते हैं। किंतु ऐसी इच्छा का पालन होते-होते अन्य कार्यों से इच्छा दब जाएगी।'' इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश लोग अविवाहित रह जाते हैं। डार्विन का यौन निर्वाचन सिद्धांत हितकर है, क्योंकि कभी-कभी अक्षम अयोग्य व्यक्ति भी साथी का चयन कर लेते हैं, जो समाज में कुरूप और बुद्धिहीन संतान जनकर उसे प्रदूषित कर देते हैं। इलियट हार्वड ने डरविन के सिद्धांत को स्वीकार किया है। वात्सायन ने अपने कामसूत्र में यह व्यक्त किया है कि कुमारी उसी को अपना पति बताना चाहती है, जो सुशील, सीधा और विनम्र हो, उसकी भावनाओं का सम्मान करे तथा ऐसे व्यक्ति को भी चाहती है, जो अपने परिवार का पालन-पोषण कर सके। ईमानदार, योग्य और आज्ञाकारी हो। मनुष्य ऐसी नारी से विवाह करना चाहता है, जो सुंदर हो, अच्छा स्वास्थ्य, अंग समानुपातिक हों। अच्छा स्वास्थ्य, अंग समानुपातिक हो, सुंदर दाँत, नाक, कान आँखेंवाले सुंदर केश। काम-सूत्र 2 श्लोक।

2. सादवाद—यह फ्रायड के अनुसार काम-वासना का एक विकृत स्वरूप है। जिसे हम परपीडऩ वृत्ति कहते हैं। यदि इसे यातनावाद की संज्ञा दी जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा। सामान्यत: सादवाद एक ऐसी यौन-भावना है, जो केंद्रित व्यक्ति को चाहे शारीरिक हो या नैतिक कष्ट पहुँचाने की इच्छा से संयुक्त होती है। डॉ. फ्रायड ने फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार मार्किस-द-साद के नाम से सादवाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इसमें दूसरे व्यक्ति को कटुशब्द, उपेक्षा, अपमान, क्रोध, निष्ठुरता और कठोरता से तथा शारीरिक चोट-पीड़ा, पहुँचानेवाले व्यक्ति को सुख-संतोष से रतिसुख मिलता है। किंतु मारना-पीटना प्रेम का दुरावेश है। इसकी परितृप्ति से मनुष्य को भावनात्मक परितोष मिलता है। सादवाद और मासोकवाद एक-दूसरे से संपृक्त है। फ्रायड का मानना है कि मासोक वादी पुरुष कभी कठोर स्वभाव का हो सकता है। सादवादी स्त्री की भाँति सुकुमार, डरपोक और झेंपू होता है। इस विषय पर हेवलॉक एलिस ने विशद प्रकाश डाला है।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में नर-नारी की यौन भावनाओं को प्रक्षिप्त करने के लिए नख-छेदन अर्थात् नारी को नाखूनों से नौंचना, चिकोटी, दाँतों से काटना आदि का वर्णन किया है। यह क्रियाएँ नारी को कष्ट देती है फिर भी प्रेमी और प्रेमिका अधिक उत्तेजित होकर सांमोगिक क्रिया के लिए उद्यत हो जाते हैं। यह पशुओं और पक्षियों में देखा जाता है। घोड़ा-घोड़ी का, गधा-गधी को, बकरा-बकरी को मैथुनिक सक्रिया में काटते हैं। यद्यपि यह कष्टकर होता है, लेकिन यह दु:ख आनंद का दास बन जाता है। प्रेम के इस द्वंद्व में कपोत और कपोती, चिरौटा और चिरैया भी आनंदित होते हैं। प्रकृति का कैसा अद्भुत खेल है। प्रेम में काटने की क्रिया के अनेक उदाहरण हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इसका वर्णन किया है। शेक्सपियर ने क्लियोपैट्रा के संबंध में बताया है, भारत में लेखकों ने नखछेदन और दंतछेदन का उल्लेख किया है। कालिदास ने कुमार संभव में कहा है कि शिव ने पार्वती के लाल अंधरों कारा है। कवि भारवि नै नख-छेद्दा और दंत छेदन तथा चुंबन का उल्लेख किया है, माघ ने स्पष्ट किया है कि जब ठंडी हवा मटकती हुई चलती थी तो नारियाँ कपोलों पर दाँतों से काटे जाने पर सुंदर लगने लगती थी। जयदेव ने अपने गीत गोविंद में मनोहारी चित्रण किया है—राधा-कृष्ण अपने संकेत-स्थल पर मिलते हैं। आलिंगन बद्ध हो जाते हैं और दोनों एक-दूसरे के शरीर को नाखूनों से नौचते हैं। कृष्ण-राधा के कुचों का स्पर्श-मर्दन करता है। प्रेमिका उन्हें अपनी बाँहों में भींचती है और दोनों एक-दूसरे को दाँतों से काटते हैं और चूमते हैं। और कोमोद्दीप्त होकर दोनों रति-भोग में प्रवृत्त हो जाते हैं।'' अत: सादवाद को और मासोकवाद को अलग नहीं कर सेकते।

3. मासोकवाद—यह एक ऐसी यौन मनोभावना है, जो निष्क्रिय यौन भावना को जगानेवाले पात्र द्वारा

शारीरिक रूप से दमित किए जाने और नैतिक रूप से अपमानित किए जाने की इच्छा से संबद्ध है। फायड ने कहा है कि मासोकवाद स्वयं अपने प्रति मुड़ा हुआ भाववाद ही है। ऋकगाट्त्सिंग द्वारा इसे सहयौन सुखदु:वास्तित्व के रूप में प्रवर्तित किया गया है। ऑस्ट्रिया के उपन्यासकार साकेर मासोक के नाम पर मासोकवाद का प्रवर्तन हुआ है। पुरुष में साहवाद और स्त्री मासोकवाद है, किंतु हिर्शफील्ड के अनुसार पुरुष का सादवाद और स्त्री का मासोकवाद स्वरूप यौन उपवेग की उद्वेग की कामोन्माद की उग्र अवस्था है। मनोवैज्ञानिक हितोर्त हितो...मासोकवाद को आत्म-पीडऩ वृत्ति कहा है। उपनिष्ठ है। मासोकवादी अपने को स्वयं ही कष्ट पहुँचाते हैं, उन्हें इसी में सुख और संतोष मिलता है। यह देखा जाता है प्रेमी-प्रेमिका को प्रसन्न करने और उसे पाने के लिए कष्ट उठाता है। आत्म उपेक्षा करता है, उपवास करता है। चित्तौड़ नरेश रतनसेन अपनी प्रिया पदमावती को पाने के लिए जोगी बन सिंहलद्वीप जाता है, जायसी ने अपने पदमावत में इस आख्यान को व्यक्त किया है। रूसो ने अपनी आत्मकथा में ऐसे स्वरूपों का वर्णन किया है, जिसमें मासोकवाद और हस्तमैथुन सम्मिलित थे। जायसी की नागवती शरीर को जलाकर भस्म करना चाहती है। पद्मावती दु:खी हो जाती है तथा जयदेव की राधा प्रेम में व्यथित होकर जमुना में डूबकर मरना चाहती है। ये घटनाएँ मासोकवाद के परिकर में आती है।

4. कामात्मक प्रतीकवाद—यौनमनोवैज्ञानिक हैवलॉक एलिस ने यौन विच्युति को प्रतीकवाद की संज्ञा दी है। प्रतीकवाद का अर्थ है—चिह्न, जो किसी व्यक्ति, वस्तु तथा घटना का प्रतिनिधित्व करता है। फ्रायड ने कामवासना को जीवन में स्थान दिया है, जहाँ से मानव की समस्त क्रियाएँ प्रवाहित होती हैं अचेतन मन की दमित वासनाएँ तथा इच्छाएँ प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। इंडोसाइकिक सेंटर से बचने के लिए कामवासना के द्योतक प्रतीकों का प्रयोग अचेतन मन द्वारा किया जाता है। किंतु यौन मनोवैज्ञानिक युंग ने सामाजिक एवं आध्यात्मिक व्यापारों को निर्देश करनेवाले उपादानों को प्रतीकवाद की संज्ञा दी है जो स्वस्थ प्रेम का परिमार्जित रूप में कार्य करता है जो मनोवैज्ञानिक अर्नेस्टजोंस का कथन है—''प्रतीकवाद के सभी रूपों का आवश्यक कार्य है उस रोक-थाम पर काबू पाना, जो किसी अनुभूत भाव की मूल अभिव्यक्ति में बाधा पहुचा रहा है।''

प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं, क्रियाओं में उसके व्यक्तित्व का अनुभव करता है। प्रेमिका के शारीरिक अंगों हाथ, पैर, स्तन, नितंब केश क्षरण, मल-मूत्र, पसीना तथा महक आदि से उद्दीप्त होता है। इसके अतिरिक्त बच्चे के प्रति प्रेम, वृद्धों के प्रति प्रेम तथा जानवरों के प्रति कामात्मक प्रेम को इसी परिकर में रख सकते हैं। प्रेमिका के पहनने के वस्त्र दस्ताने, जूते और मोजे, साड़ी, ब्लाउज, चोली, गंजी, कच्छा, पेटीकोट सभी वस्तुएँ प्रेमी के यौन मनोजीवन का भाग बन जाती हैं कामात्मक प्रतीकवाद स्त्रियों की अपेक्षापुरुषों में अधिक पाया जाता है। कामात्मक दृश्यों तथा पशु-पक्षियों के मैथुनिक-कार्य भी दमित वासना को जाग्रत् करते हैं। स्त्रियाँ मनुष्य की शारीरिक गठन के साथ उनके हाव-भाव, स्फूर्ति कार्यशीलता पर मुग्ध हो जाती हैं।

5. पिगमैलियनवाद—यह निर्जीव मूतयों के प्रति यौन-आकर्षण है। प्राय: देखा जाता है कि व्यक्ति चित्रों और मूतयों की प्रजनांगिक नग्नता को देखकर आकर्षित होते हैं, जिनसे यौन उत्तेजना हो जाती है। जो मनोवैज्ञानिक कारण से होता है, जिसे मोनोग्राफी कहते हैं। किंतु यौन-विस्मृति ही पैगमैलियनवाद की जननी है। पिगमैलियन एक मूर्तिकार था। उसके द्वारा बनाई गई सुंदर नारी की मूत थी जिसकी ओर वह आकर्षित हो गया था और उसे अपनी प्रिया समझकर प्यार करता था। वह यौन आवेग से उद्दीप्त हो उठता था, जिसके कारण उसे जेल जाना पड़ा था। पिग मैलियनवाद एक रोगग्रस्त प्रवृत्ति है। हैवलॉक एलिस ने कहा है कि यह प्रधानत: पुरुषों में पाई जाती है। उन्होंने हिर्शफील्ड का उदाहरण देते हुए उल्लेख किया है कि एक महिला अजायबघर में एक पुरुष की मूत देखकर कामातुर हो उठी थी, उसने उसके नीचे के स्थान को देखकर चुंबनों से भर दिया था। सिनेमा और दूरदर्शन में

चलते-फिरते चित्रों में युवक और युवतियाँ अपनी प्रिय अभिनेत्री तथा प्रिय अभिनेता को देखकर तथा उनका नृत्य देखकर यौन रूप से उद्दीप्त होकर क्षरित होने लगते हैं। उक्तवाद का यहाँ परिचय ही दिया है।

6. नार्किससवाद—यह व्यक्ति द्वारा एकांत मैं की जानेवाली आत्ममैथुनिक सक्रिया है। हैवलॉक एलिस ने इसे आत्ममैथुनिक ही कहा है, किंतु इस शब्द का डॉ. नैके ने जर्मनी में नार्किसिसवाद के रूप में अनुवाद किया था। उन्होंने यह भी कहा नार्किसिसवाद की दश में पूर्णतृप्ति भी हो जाती है। इसके चिह्न कथा-साहित्य तथा कविता में भी ढूँढ़े जा सकते हैं। नार्किसिसग्रीक का एक नौजवान था जो अपने ही प्रतिबिंब के प्यार में खो गया था। हमारे लोकसाहित्य में आत्ममैथुनिक भावनाएँ आनंद अपने स्वाभाविक एवं स्वस्थ अभिव्यक्तियों में उभरकर आती है, जो संपूर्ण रूप में रंजित कर देती है। डिकिंस ने ठीक ही कहा है कि व्यापक अर्थ में आत्ममैथुन के अंतर्गत किसी प्रकार की आत्माभिव्यक्ति में व्यक्त होनेवाला आत्मप्रेम समाविष्ट है। नार्किसिसवाद को आत्मप्रेमवाद भी कह सकते हैं। सांसारिक समस्त क्रियाएँ पति-पत्नी का प्रेम, माता-पिता का वात्सल्क्य सभी आत्म-प्रिय होते हैं जैसा कि याज्ञवल्स्य ने कहा है—''आत्मानस्तु कामाय सर्वम् प्रिय भवति'' फ्रायडकी यही तो निजी विधा है, जो समस्त प्राणियों में अंतभूर्त है। कुछ मनोविश्लेषकों के विचार से धर्म और दर्शनों के तत्त्व भी नार्किसिसवाद में समाहित हैं। मनोवैज्ञानिक फेरेंत्सी ने यह सुझाव दिया है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान प्रकृति स्वयं नार्किसिसवादी उद्देश्यों में संचालित होती है। हैबलॉक ने रोहीम का उदाहरण देते हुए कहा है कि असभ्य जातियों की लोक-कथाओं में नार्किसिसवाद के तल उपलब्ध होते हैं। यह स्थिति लोकसाहित्य तथा लोक-गीतों में प्रतिबिंबित होती है। स्त्रियों में आत्ममैथुनिक संक्रिया अधिक रहती है। यह अति कल्पनाशीलता है।

7. यूरेनवाद—यौन-मनोवैज्ञानिकों ने समलैंगिकता को यूरेनवाद की संज्ञा दी है। यह दशा सामान्य और स्वाभाविक भिन्न-लैंगिक यौन संबंधों से विपरीत है। यह अप्राकृतिक और घृणित मन:स्थिति का द्योतक है। असभ्य और बर्बर जातियों में समलैंगिक व्यभिचार प्रख्यात रहा है। पाश्चात्य देशों में इस मैथुनिक संतृप्ति को महत्त्व दिया गया है, नवजागरण का सबसे महान् मूर्तिकार माइकल समलैंगिक आदर्शों और वासनाओं का समर्थक था, प्रसिद्ध कवि मार्लो तथा अंग्रेजी के निबंधकार बेकन ने इस मैथुनिक संक्रिया को महत्त्व दिया हैं। जर्मनी के यौन-मनोवैज्ञानिक हिर्शफील्ड ने समलैंगिक सांभोगिकता पर प्रकाश डाला है। यह स्थिति पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कम पाई जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियाँ इस मैथुनिक क्रिया में रुचि नहीं लेतीं, ऐसा ज्ञात हुआ है कि नाटककारों, साहित्यकारों तथा कलाकारों में अधिक पाई जाती है। समलैंगिकता में पुरुष-पुरुष से और स्त्री-स्त्री से यौन आवेग को परितुष्ट करती है। भारतीय संस्कृति में इस प्रकार का व्यापार देखने में नहीं आता। अत: हमारे लोक-साहित्य में उदाहरण मिलना संभव नहीं है।

8. एओनवाद—यह एक ऐसा यौन मनोवेग है कि स्त्री-पुरुष का और पुरुष-स्त्री का रूप धारण करता है। ये केवल वेशभूषा ही नहीं धारण करते, अपितु साधारण रुचि हाव-भाव और भावात्मक झुकाव में भी भिन्नलिंग के साथ अधिक या कम अपने को एक रूप करके देखते हैं। इस एक रूपता में भिन्न लिंग के यौन झुकाव का अभाव रहता है। हिर्शफैल्ड ने इसे भिन्न लिंगीय परिच्छासक्तिवाद की संज्ञा थी। किंतु हैवलॉक एलिस ने यौन सौंदर्य क्षेत्रीय विपरीतता के रूप में माना है। लेडी हेस्टर वेस्टान होय ने अपना दीर्घ जीवन पुरुषवेष में ही बिताया था। मानसिक दशा में एक एओनवादी व्यक्ति उग्रतम अंश में प्रशंसित लक्ष्य के अनुकरण के और उसके एक रूप होने के सौंदर्यात्मक वैशिष्ट्रिय को मूर्तरूप प्रदान करता है। हमारे हिंदी साहित्य में कदाचित् सखी संप्रदाय इसी भावना का स्वरूप है। संभव है कि यह नपुंसकता को छिपाए रखने का उपाय हो। फेरीकेन ने कहा है—''एओनवाद की विशिष्टता नपुंसीकरण जटिलता या अंडकोषच्छद से संबद्ध हो।

9. धर्म और सस्कृति—जन-जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है फ्रायड के अनुसार अचेतमन में प्रच्छन्न वासनाएँ चेतन के धरातल पर आती है, तब भय संकुल मानस में कल्पना धर्म की संचेतना में जगती है। धर्म का आधार प्रेम न होकर भय, घृणा और विनाश की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। मनुष्य अपने अपराध और पाप के प्रक्षालन के लिए धर्म का सहारा लेता है। शुभकर्मों की ओर संप्रेरित होकर सुख और समृद्धि की कामना करता है। जैसा कि जैमिनी सूत्र में आया है—

शुभेन कर्मणा सौख्य, दुखं पापेन कर्मणा

कृतो भवति सर्वत्र: अनाकृतो विद्यते न कवचित्॥

अर्थात् शुभकर्मों से सुख और पापकर्मों से दु:ख प्राप्त होता है। जो सर्वत्र करने पर कुछ होता है बिना किए कुछ नहीं होता है।

2. सौंदर्यशास्त्र—फ्रायड के अनुसार विशिष्ट शास्त्र है। कलाकार अंतर्मुखी होता है। जो भावों तथा संवेगों के कल्पना के लोक में संतरण करता है। वह सम्मान, प्रतिष्ठा, धन शक्ति तथा नारी का प्रेम पाने के लिए छटपटाता है और उसके आंतरिक मनोवेग साधनहीन होकर अचेतन मन में समाहित हो जाते है। सुंदरता अंतरात्मा की अनिर्वच अनुभूति है। कलाकार की इंद्रधनुषी कल्पना उसकी कृति में प्रतिबिंब होती है। उसकी कामात्मक वासनाओं की परितुष्टि हो जाती है। समाज उसका समाधान करता है और वह यश, धन, गौरव तथा नारी का प्रेम पा लेता है। काम संतृप्ति और प्रतिष्ठा प्राप्ति मानव की चिरंतन वासना है।

3. काव्य और साहित्य—व्यक्ति की दमित इच्छाएँ और वासनाएँ अचेतन मन में अविसक्त हो जाती है, वायवी संसार के अवलोकन से चेतन के स्तर पर तैरने लगती है, तब अनेक मनोविकारों और संवेगों के ज्वार उठते हैं। कवि या साहित्यकार शब्दों में बाँधने का प्रयास करता है। वही अंतर के अमूर्त भाव मूर्तमान होकर काव्य या साहित्य का रूप धारण कर लेते हैं। सो भी कल्पना के अमृत में सिक्त होकर। अचेतन मन की प्रच्छन्न वासनाएँ कविता में करवट लेने लगती है। तब उसे दु:ख में सुख का आभास होता है, क्योंकि वेदना की भूमि ही रहती है। गीत फूटते हैं। साहित्य की सरिता प्रवाहित होती है सुख-दु:ख की आँखमिचौनी काव्य में चलती है।

यौन विश्लेषण के प्रतिमान—प्रतिमान ग्रीक भाषा के पैराडाइम शब्द का रूपांतरण है, जिसका अर्थ है—आदर्श प्रतिरूप। ज्ञानेंद्रियों द्वारा ग्रहण किया गया ज्ञान तथा धारणा है, जिसके आधार पर यौन मनोविश्लेषण करना है। प्रतिमान शक्तिशाली मान है, जो ऐसे दर्पण सृष्ट करते हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति के यौन मनोभावों का अवलोकन कर सकते हैं। समझ और परख सकते हैं। इस संदर्भ में ज्ञानेंद्रियों की अहम भूमिका रहती है जैसा कि अथर्ववेद मैं कहा है—

''इमानियानि मनषष्ठानि संसृजे धोख शांतिरस्तुन:॥''

अर्थात् ये जो मन और दूसरी पाँच इंद्रियाँ सृष्टि ने तीव्र करके मेरे हृदय में रखी हैं, जिनके द्वारा घोर अनर्थ किया जाता है। इन सब इंद्रियों और मन पर विजय करके जीवात्मा अंत:करण में निवसति जीवात्मा का शरीर की प्रजनांगिक संक्रियाओं पर विजय नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि विधाता की नैसर्गिक योजना है। जीवन है तो उसका रक्षण संततवाही बनाए रखने के लिए नर-नारी की सहवासिक क्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रतिमान शब्द एक कसौटी है। यहाँ उसका स्वरूप अभिव्यक्त करना सर्वथा अपेक्षित है—

1. स्पर्शात्मक प्रतिमान—नर-नारी के शरीर में त्वचागत रंध्र होते हैं और यह त्वचेंद्रिय स्नायुमंडल से संयुक्त है। स्पर्श का जीवन में प्रमुख स्थान है, क्योंकि प्रेम और प्रेमक्रीड़ा का क्रियाशील उपादान है यह अत्यधिक उत्तेजक इंद्रियानुभूति है। शिशुओं के प्रति प्रेम, वात्सल्य और दुलार प्रकट करने का प्रमुख साधन है तथा पुरुष के वैद्युतिक

स्पर्श से नारी का शरीर झंकृत हो उठता है, जैसे वीणा के तार हलके स्पर्श से। उसके प्रजनांगिक क्षेत्र स्फूर्त होकर क्षरित होने लगते हैं, उसे यौन सुख की महती अनुभूति होती है और पुरुष की बाँहों में बँध जाती है। किशोरियाँ जादुई स्पर्श से उन्मत्त होकर पूर्ण सांभोगिक आनंद का लाभ उठाती हैं। प्रसिद्ध कवयित्री रेने वीविया ने ठीक ही कहा है—''स्पर्श की अद्भुत तथा जटिल कला सुगंधों के स्वप्नों और शब्दों के जादू की समता करती है। स्त्रियाँ सहजता, बुद्धि से प्रेम में स्पर्श के महत्त्व को मानती हैं।'' इस कथन से यह विचार पुष्ट होता है कि स्पर्श ही वास्तविक रूप से प्राथमिक तथा आदिम कामानुभूति है।

यह स्पष्ट है कि स्त्रियों के यौन जीवन में स्पर्श का विशेष महत्त्व है। यौन मनोवैज्ञानिक लियिन मार्टिन ने छात्राओं के अध्ययन से ज्ञात किया कि उनमें स्पर्श आधारभूत भावों की प्रधानता है। गुदगुदी की अनुभूति स्पर्शानुभूति की गौण उपज है, जो यौन-आवेग और स्फीति की मधुर अठखेली है। यह यौन मिलन की चार्मिक प्रतिक्रिया है। वात्सयायन ने अपने कामसूत्र में आलिंगन, चुंबन, लेहन तथा सांभोगिक क्रिया को भी स्पर्श की परिधि में समाहित किया है। उनके अनुसार अँगूठा तलवे तथा कानों का चुंबन यौन उत्तेजन में अपनी तीव्र भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त केश खींचना, कपड़े खींचना तथा घूँघट खोलना और छीना-झपटी करना स्पर्श संक्रिया के अंतर्गत आते हैं। चर्म और यौनांगों का अंतरंग संबंध है। ओष्ठों की बनावट भी यौनि आकृति से मिलती-जुलती है, और नर-नारी के ओठों में चर्म और श्लेष्मिक झिल्ली में अंतरंग संबंध होता है।

2. गंधात्मक प्रतिमान—नासिका व्यक्ति की अति संवेदनशील इंद्रिय है। सुगंध नासिका रंध्रों से प्रविष्ट होकर मस्तिष्क के स्नायुमंडल को उत्तेजित करने में अहम भूमिका निभाती है, जिससे जननांग अप्रत्यक्ष रूप से उद्दीप्त होने लगते हैं। इसलिए इस संक्रिया को गंधात्मक प्रतिमान की ससंज्ञा दे सकते हैं। गांधिक अनुभूति से मानसिक क्रियाएँ संपादित होती हैं और उन उत्तेजनाओं से उपयुक्त यौन उद्दीपन होता है। ये अनुभूतियाँ अत्यंत भाववेगपूर्ण होती हैं, जिससे कल्पना क्षेत्र प्रभावित होता है। यौन मनोविज्ञानियों ने यह अनुभव किया है, समस्त सुगंधें स्नायविक पद्धति के लिए शक्तिशाली उत्तेजक है, जो अन्य उत्तेजकों की भाँति कर्मशक्ति को बढ़ा देती है। सभी स्त्री-पुरुषों की अपनी-अपनी दैहिक महक होती है, जो वयस्कता में ही विशिष्ट हो जाती है, यों तो बालक, जवान तथा वृद्धों में भी महक होती है। यौन मनोवैज्ञानिक बेंतुरी ने कहा है—''शारीरिक महक दोयम दरजे की यौन विशेषता है।'' निस्संदेह स्त्री-पुरुष दोनों की नासिका में गंधावाही श्लेष्मिक झिल्लियाँ है, जिन का जननांगिक अवयवों से अंतरंग संबंध है। प्राय:, जननेंद्रिय पर पडऩेवाले प्रभाव नासिका को प्रभावित करते हैं और नासिका पर पडऩेवाले प्रभाव जननेंद्रिय को प्रभावित करते हैं। कई सुकुमार स्त्रियाँ महक से तथा प्रेमी के शरीर की महक से इतनी अभिभूत हो जाती है कि पूर्ण मैथुन भी हो सकता है। किशोरियाँ किशोरों की अपेक्षा गंध से अधिक प्रभावित होती हैं। यौनोदगम से लेकर पूर्ण यौवन में उनमें गंध के प्रति आकर्षण बना रहता है। यहाँ तक वृद्धावस्था में भी स्त्रियों में गंधानुभूति बनी रहती है। स्त्रियाँ मुश्क, कस्तूरी, गुलाब, तथा खश की सुगंध को अपनाती है, इनमें सबसे तीव्र गंध मुश्क की होती है। गंध से आसपास का वातावरण महक उठता है। प्राय: देखा होगा स्त्रियाँ कुसुमप्रिया होती हैं, वे गेंदा, गुलाब, बेला आदि के फूलों से हार बनाती हैं, गजरे सजाती हैं और अपनी शय्या को महकते फूलों से सजाकर सांभोगिक सुख का आनंद उठाती है।

3. श्रवणात्मक प्रतिमान—व्यक्ति के कर्ण-रंधों से वाणी का संचरण होता है, जो श्रोता के स्नायविक और मांसपेशियों को प्रभावित तथा उत्तेजित करती है। प्रकृति संगीतमय, लयात्मक एवं छंदात्मक है। संगीत का प्रभाव हृदय, मस्तिष्क रक्त-संचरण, पाचन-संस्थान से लेकर जननांगों तक प्रसरण होता है। संगीत में दिव्य जादुई शक्ति है, जो नर-नारी में यौन उत्तेजना की वृद्धि करती है। नारी का तो प्रत्येक अंग ही संगीतमय है, उसकी मधुर वाणी से

संगीत के सुधासिक्त स्वर फूटते हैं जो पुरुष को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। प्रेम की मनुहार भी तो वाणी से होती है, तब भी तो विहारी का मृग नाद पर रीझकर शरीर का त्यागकर देता है। मधुर संगीत यौनांगों को उद्दीप्त करता है तथा नर नारी को यौन-मिलन के लिए बाध्य कर देता है। यौन विश्लेषक फ्रेरे ने कहा बेसुरापन मन को अवसादित कर देता है। यौनोदगम के समय किशोरियों में संगीत के प्रति विशिष्ट आकर्षण होता है। मांसपेशियों की ऐच्छिक और अनैच्छिक संक्रियाएँ संगीत से उद्दीप्त हो उठती हैं। जब सभी वाद्यों के साथ संगीत की रागिनी फूटती है तो उसकी मादक और भाव प्रवण स्वर लहरी कानों में तैरती हुई नर-नारी के शरीर की वीणा के तार झंकृत कर देती हैं। उसकी झंकृति से, उसके स्वर तथा उसकी गूंज से हृदय करुणा या हर्ष से पिघलकर आँखों में आ जाता है। उसकी रस-धारा से जननांग भी रससिक्त हो जाते हैं।

प्राय: यह देखा जाता है यौवनोदगम के समय किशोर और किशोरियों के स्वर में परिवर्तन आ जाता है। उसकी भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। किशोरों की आवाज मोटी और भारी हो जाती है और किशोरियों की आवाज मृदुल और श्रुतिमधुर हो जाती है। संगीत प्राणों का जादू है। प्रणय का पैगाम है और सांभोगिक मनुहार। नारी के गाने बजाने, नृत्य की थिरकन और चूडियों की खनक से नपुंसक को भी कामोद्रेक हो सकता है। अमरूक शतक की राधा कृष्ण के मधुर आलाप को सुनने के लिए उत्कंठित है, किंतु लज्जावश कहती है—

''तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोते निरुद्ध मया।''

संगीत जीवन को सरसित करता है, अवसाद को मिटाता है तथा नर-नारी को दीर्घजीवन प्रदान करता है। स्त्रियों में पुरुष की आवाज से अनुभुतिशीलता बढ़ जाती है, जिसके कारण वह पुरुष के प्रेम में फँस जाती है। यौन मनोवेत्ता गाँकुरतो ने कहा है—''संगीत स्त्रियों के लिए प्रेम का भंडार है।'' अंतत: हम कह सकते हैं संगीत नर-नारी को प्रभावित करता है, लैंगिक अवयवों में संकुचन और प्रसारण कर के मैथुनिक संक्रिया को संप्रेरित करता है।

4. अवलोकनात्मक प्रतिमान—चक्षुरेंद्रिय जीवन की महत्त्वपूर्ण इंद्रिय है, जिसके दर्शन प्रभाव से मस्तिष्क एवं स्नायुविक तंत्र झंकृत हो जाता है और वे एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। अत: यह अन्य इंद्रियानुभूतियों में श्रेष्ठ तथा प्रधान हो गई हैं। प्रथम दृष्टि से ही प्रेम की अनुश्रइत सजग होती है, क्योंकि नारी के यौवन को मादकता और उसकी कामजनित अँगड़ाई तथा बाकी चितवन और यौन मिलन का संकेत सामयिक एवं पेशीगत उत्तेजना को तीव्रतर कर देते हैं। नयन तो कामदेव के दूत हैं। इसे हम अवलोकनात्मक कह सकते हैं।

सौंदर्य का कोई सर्वमान्य मानदंड नहीं है। नर-नारी के कामांग सुंदर नहीं होते, अत: उन्हें आकर्षण और विकर्षण का उपादान नहीं कहा जा सकता है, हैवलॉक एलिस के अनुसार संस्कृति के उद्भव के आदिम युग में प्रजनन अंग पवित्र माने जाते थे और उनकी पूजा की जाती थी, जैसे भारत में शिवलिंग की पूजा उसी का स्वरूप है। प्राथमिक यौन विशेषताएँ विपरीत लिंग के सदस्य की आँखें सम्मोहक हो सकती हैं। यौन क्षेत्र शरीर के मर्मस्थल होते हैं, जो मैथुनिक संक्रिया के उत्तेजन में महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रजननांगों के प्रदर्शन की अपेक्षा उन्हें छिपाए रखने में अत्यंत आकर्षण बढ़ जाता है। विद्यापति की नायिका को उसकी सखी उसे समझाते हुए कहती है कि हे सखी तुम कटाक्ष दृष्टि से अपने प्रिय के मन में काम-भावना जगाना लज्जित होना, कुचों को छिपाए रखना और इस प्रकार क्रीड़ा के रस को बनाए रखना—

''मोड़ि बदन सखि! दहन लजाए
कुटिल नयने देव मदन जगाए।''

हैवलॉक एलिस ने लज्जा को मैथुन का प्रत्याख्यान कहा है। योन-निर्वाचन में अवलोकन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भव्य, आकर्षक और स्वस्थ, कर्मठ पुरुष को देखकर नारी को यौन तृप्ति मिलती है, जिसे फेरे ने एग्रोफिली

कहा है। क्योंकि इस क्रिया से संकुचन प्रसरण बढ़ जाता है।

गीतगोविंद के कृष्णा-राधा के सौंदर्य को स्मरण कर कहते हैं कि हे प्रिय राधे! तुम्हारी भौंहें कामदेव के धनुष के समान है और कटाक्ष बाण के समान है, जो मुझे व्यथित करते हैं—

''भूचापे निहित : कटाक्षवेशिखो निर्मातु मर्मव्यथ्यय।''

इस प्रकार उक्त प्रतिमान यौन मनोविश्लेषण में स्त्री-पुरुषों के द्वारा गाए लोकगीतों के तथ्यों को परखने में अपनी कसौटी का कहाँ तक सफल निर्वहन करती है। मौसमों के बदलने पर, त्योहारों और उत्सवों में नर-नारी के अंगों तथा यौनांगों में विशेष प्रकार का उल्लास, उत्तेजन और स्पंदन होता है। अप्रत्यय रूप काम, मनोभाव नर-नारी में यौन-मिलन के लिए संप्रेरित करते हैं, तभी तो लोक कवि के भाव गंधित लोकगीत, नृत्य और संगीत की स्वर-धारा प्रवाहित करते हैं।

❑

भारत में यौन मनोविज्ञान का विकासक्रम

काम मानव के मानस की अंतर्भूत संचेतना है, जो उसके जन्म के साथ संभूत हुई है। यह अव्यक्त, अक्षर, अमूर्त एवं अद्‌भुत है। ऋग्वेद में उसे मन का रेतस या बीज कहा है। यह जीवन का मधुर रहस्य है। यह नर-नारी के शरीर में जन्मजात तरंगित है। फ्रायड ने इसे लिविडो की संज्ञा दी है, जिसे अन्य मनोविश्लेषकों ने कामशक्ति कहा है। भारतीय कामशास्त्रियों ने इसे प्रेम का विज्ञान या रतिविज्ञान के रूप में महत्त्व दिया है, जो प्रेम करने की कला है, काम उत्तेजना का विस्मयकारी रहस्य है। जीवन जीने के प्रेम-पीयूष का उत्स है। प्रकृति का यह अपना सम्मोहन और आकर्षण, जो समस्त प्राणियों को प्रेम और सांभोगिक क्रियाओं से प्रवृत्त करके सृष्टि के क्रम को बनाए रखने के लिए सचेष्ट है। नर-नारी के मधुर मिलन में दो हृदय स्पंति हो उठते हैं और अपने आपको मधुर संगीत में निमग्न कर देते हैं। उस स्थिति में कुछ भी असामान्य और अशुद्‌ध दिखाई नहीं देता है। अपितु सारा संसार गुलाबी कुहासे में तैरता सा प्रतीत होता है। प्रेम का सागर उद्‌वेलित हो उठता है। साँसों में सुगंध का सैलाव आ जाता है और अधर वंशी के स्वर गुनगुनाने लगते हैं।

वैदिक युग में विज्ञान की विविध शाखाओं का उद्‌भव और विकास हुआ है। जैसे व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्यामिति, व्याकरण ज्योतिष, विधि, खगोल-विज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र, आदि उसी युग में, प्रेम-विज्ञान या कामविज्ञान का अध्ययन प्रारंभ हुआ, जिसका हमारी सभ्यता और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। काम शास्त्र के अध्ययन की परिपाटी चल पड़ी। क्योंकि इसे मानव सृष्टि का विज्ञान स्वीकार किया गया।

काम-काम शब्द का अर्थ है रति या प्रेम। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में इसे मन का रेतस या बीज कहा गया है, जो समस्त सृष्टि का मूलाधार है—

'कामस्तदग्रे समर्वताधि मनसा रेत: प्रथमं यादासीत्।'

ऋग्वेद में लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि से संतान की कामना करती है। अगस्त्य सांत्वना देकर सांभोगिक क्रिया करते हैं। यह प्रसंग विज्ञान के विकास का द्योतक है। अथर्ववेद में रोगों की चिकित्सा, जादू टोनों के मंत्र, स्वास्थ्य, पुंसत्व और दीर्घ जीवन की प्रार्थनाएँ की जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुषों के वशीकरण सम्मोहन और गर्भाधान के मंत्र भी दिए गए हैं। यह काम विज्ञान के आदिम स्रोत हैं।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में काम को ऐसी प्रवृत्ति कहा है, जिसके बिना संसार का कोई कार्य नहीं होता। मनुस्मृति में लिखा है कि जो भी कार्य किया जाता है, वह काम की ही चेष्टा है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में काम को सृष्टि के आदि में उद्‌भूत होनेवाला कहा है। अथर्ववेद में स्पष्टत: काम को सर्वप्रथम होनेवाला देवता, पितरों में श्रेष्ठ, सर्वत्र व्याप्त, वीर्यवान आदि कहकर बड़ी प्रसंशा की है। यथा—

''कामोजसे प्रथमो नैनं देवा आयु: पितरो न भत्र्या:
ततस्त्वमीस ज्यायान् विश्वहा महा...''

शतपथ ब्राह्मण में यह आया है कि प्रजापति मनु ने कामोन्मत होकर अपनी दुहिता को खींचकर आलिंगन में बाँधने का प्रयास किया और अनैतिक यौनाचार का प्रयत्न करने लगे थे। यही प्रसंग ऐतरेय ब्राह्मण और मत्स्यपुराण में भी मिलता है। इसी ग्रंथ में श्रद्‌धा और मनु के मिलन का उल्लेख है। उन्हीं की गाथा तैत्तिरीय ब्राह्मण, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मावर्त पुराण में मिलता है। मनु ने श्रद्‌धा से यह कर कि श्रद्‌धे! इन आनंदमय क्षणों में तुम्हारी लज्जा बाधक है। उसे अपनी बाँहों में बाँध दिया और उसके सुकुमार और मृदुल कपोलों को चूम लिया, जिससे उसके शरीर में बिजली सी तरंगित हो उठी।

बृहदाकोपनिषद् में उद्दालक के मंथ सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है, यह ज्ञान गुरु के द्वारा मधूक, चूल, आयुस्थन, सत्यकाम आदि शिष्यों तक पहुँचा। उद्दालक के मान्थ संतति-विज्ञान के आधार पर व्याख्या करने में यह असमानताएँ नहीं हैं कि उद्दालक मंथ सिद्धांत से यौन उत्तेजन के विज्ञान का विकास हुआ। इस उपनिषद् का उद्देश्य जीवन जीने का ढंग सिखाना तथा मानव जाति की सुरक्षा और श्रेष्ठता बनाए रखना था। यदि कोई व्यक्ति शुष्क बीज डालकर पानी डालता है तो अंकुर और शाखाएँ फूटेंगी। यदि कोई नारी पुरुष के पास संतति की भावना से आती है तो उसे शुक्रदान देना पाप नहीं है। उद्वालक के एक शिष्य ने उसकी पत्नी से श्वेतकेतु नामक पुत्र को जन्म दिया था।

गर्भोपनिषद में कहा गया है कि पृथ्वी, जल, पावक, आकाश और वायु तथा षट रसों के संयोग से वीर्य का निर्माण होता है। पुरुष नारी के साथ सांभोगिक क्रिया से उसके गर्भाशय में शुक्र का विरेचन कर के गर्भाधान करता है। भ्रूण का संरक्षण, उसका परिपालन करके तथा संतान को प्राप्त कर सृष्टि के क्रम को चलाने का उपक्रम करता है।

महाभारत में नियोग की प्रथा थी। उस युग में नर-नारी में संतान-प्राप्ति की बलवती भावनाएँ थी। राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, उसके परिणामत: उनके चार पुत्र हुए। बलि अंधे ऋषि दीर्घतमा के निकट संतान की इच्छा से गए थे कि वह उसकी रानियों से पुत्रों, को जन्म दें। राजा दुपद भी उनके पास गए थे कि वह द्रोणाचार्य को मारने को बलशाली पुत्र प्रदान करें। रानी सुदेषणा को उनके साथ सांभोगिक संबंध करने भेजा था। लेकिन रानी ने अपनी दासी को भेज दिया था, किंतु राजा द्रुपद ने फिर से प्रेरित किया। उसने ऋषि से चार पुत्रों को जन्म दिया। गालव ऋषि ने अपने गुरु विश्वामित्र को राजा ययाति की पुत्री माधवी को दक्षिणा में दी। उससे उन्होंने पुत्रों को जन्म दिया। उसके बाद उन्होंने माधवी को राजा ययाति को वापस कर दिया।

एक बार महृष धौम्य अपने आश्रम से कहीं दूर चले गए थे, उनकी पत्नी ऋतुमती हो गई तो उनके शिष्य उतक ने सहवास करके पुत्र प्रदान किया। पाँचों पांडव नियोग की संतानें थीं। रानी सत्यवती ने भीष्म पितामह से कहकर व्यास के द्वारा राजा विचित्रवीर्य की विधवाओं से पुत्रों को जन्म देने के लिए प्रेरित किया था।

महाभारत महाकाव्य में इस प्रकार की अनेक घटनाओं के उदाहरण हैं।

पुराणों में काम को अनंग कहा गया है, क्योंकि कुमारसंभव में कालिदास ने शिव के तृतीय नेत्र द्वारा कामदहन का उल्लेख किया है। तभी से काम समस्त प्राणियों के शरीर में परिव्याप्त हो गया है। शिवपुराण में काम को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का मूतमान स्वरूप माना गया है। वहाँ लिखा हुआ है कि सब उत्पत्ति काम से ही होती है और काम में ही सबका अध्यवसान होता है। वह काम व्यक्ति के शरीर में सुषुप्ति और जाग्रत् दोनों अवस्थाओं में वर्तमान रहता है। वह दिव्य एवं स्वर्गीय आनंद काम का ही विकार है, जिसे ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। काम ही इच्छा, ज्ञान और क्रिया का शक्तिरूप है। सृष्टि का उत्पादक है। काम को प्रेम का अपार्थिव रूप माना गया है सौंदर्य और प्रेम को काम-कला का प्रतीक मानकर पूजा का विधान है।

पुराणों में कामदेव की पत्नी रति को माना गया है। वह काम-दहन के बाद विलाप करती हुई दिखाई है। सांख्यदर्शन की भाँति शैवागमों में प्रकृति और पुरुष के संयोग से संपूर्ण सृष्टि का विकास हुआ है। चेतना शक्ति व्यक्ति को प्रेरणा देनेवाली शक्ति कहा है, काम शक्ति अनादि और अनंत है, जिसे कामकला का त्रिपुरसुंदरी भी कहा गया है। कामकला विकास में पुष्यानंद ने यह सिद्ध किया है, कि शिव काम है और शक्ति कला है। उसी से सृष्टि का उद्गम हुआ है। काम मानव की प्रेरक शक्ति है।

शिवपुराण में काम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है—

''काम: सर्वमय: पुंसां, स्व-संकल्प-समुदभव:
कामात् सर्वे प्रवर्तंते, लीयंते वृद्धिमागता।''

भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानव के चार पुरुषार्थ निर्धारित किए हैं। पद्मपुराण में कहा गया है कि धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से धर्म का फल उद्भूत होता है—

''धर्मादर्थ, अर्थव: काम:, कामाद्धमफलोदय''

मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया कि बिना काम के इस संसार में कोई क्रिया संपादित नहीं होती—

''अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचिद्।''

मनु के अनुसार पुत्र माता-पिता को नर्क जाने से बचाता है। पत्नी को भार्या कहा है, क्योंकि वह संतान को जन्म देती है। विवाहित पत्नी घर की लक्ष्मी कही जाती है। किसी कवि ने कहा है कि पत्नी में छह गुण होते हैं—

''कार्येषु दासी, करणेसु च मंत्री,
भरणे भार्या, रूपे च लक्ष्मी, भोज्येषु माता,
श्यनेषु रंभा: वटगुणा: कुलबघूनां॥''

सभी प्राचीन स्मृतियों में कहा है कि यदि व्यक्ति अपने जीवनकाल में पुत्र का मुख देख लेता है तो वह पितृ-ऋण से मुक्त होकर अमरता को प्राप्त करता है। जो पुत्र विहीन है, उसके लिए स्थान नहीं है। कामानुभूतियों की यही संतवाही धारा वात्स्यायन के कामसूत्र में जीवन के तटों को छूती हुई बहती है। इसमें व्यक्ति के वैयक्तिक, शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं का वैज्ञानिक विवेचन और अनुशीलन हुआ है। किंतु इसमें अश्लीलता की दुर्गंध नहीं है, शालीनता की सुगंध से सुवासित है। कामसूत्र में वात्सायन ने सुखी, स्वस्थ एवं संपन्न नागरिक जीवन का वर्णन किया है। दैनिक जीवन की सभी क्रियाएँ समुचित ढंग से संपादित करनी चाहिए। नाटक, संगीत, गीत और नृत्य का आयोजन मनो-विनोद के लिए परमावश्यक है। चित्र कला, वीणा वाद्य तथा अन्य ललित कलाओं की अभिरुचि सुखदायक तथा आत्यंतिक आनंद देनेवाली होती हैं। यह प्रणय कला और काम केलि को अधिक सरस और मधुर बना देती है। युवकों को काम-कला की शिक्षा देने के लिए अन्य ग्रंथ भी लिखे गए हैं।

वात्स्यायन के बाद कोकशास्त्र के लेखक पंडित कोका का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने अपने सुक्ष्म निरीक्षण तथा व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यौन-आवेग तथा उत्तेजन पर विशद प्रकाश डाला है। स्पर्श से शरीर में सिहरन होने लगती है। इसी आधार पर आलिंगन चुंबन आदि यौनिक क्रियाएँ होने लगती हैं। उन्होंने काम स्थान, चंद्रकला, रति चारों प्रकार की स्त्रियों के लिए निर्धारित की हैं। कोका पंडित ने उससे पूर्व के नंदिकेश्वर और गोनिकपुत्र यौन वैज्ञानिकों का उल्लेख किया है। कृष्ण पक्ष की अमावस्या और शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा से मैथुनिक तिथियों का विधान किया है।

शरीर संरचना में कामात्मक केंद्रों का विवेचन किया है, जैसे पैर का अँगूठा, घुटने, नितंब, जाँघें, नाभि, स्तन, वक्ष-स्थल, गरदन, कपोल, ओठ, आँखें, माथा, और सिर। आगे उन्होंने बताया है कि प्रेमी को प्रेमिका के केश पकडक़र आलिंगन करना, माथा और आँखों का और कपोलों का चुंबन लेना तथा नाखूनों से नोचना कामोद्रेक के लिए उपयोगी है इसके अतिरिक्त वक्षस्थल पर हलके से घूँसे मारना, नाभि का थपथपाना तथा चतुराई से प्रजननांगों को अँगुलियों से सहलाना, जाँघों से झटका देना आदि संक्रिया से नारी का कामोत्तेजन चरम सीमा पर पहुँचता है। हैवलॉक एलिस ने भी कामोद्रेक केंद्रों को प्रेमक्रीड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य बताया है। कामशास्त्री गोयनिका ने इसकी अनंग तिथियों का निर्धारण किया है।

आचार्य पद्मश्री ने अपने 'नागर सर्वस्वसार, ग्रंथ में कामोदय के केंद्रों के उत्तेजन के लिए मासिक तिथियों का उल्लेख किया है। यहाँ पर सर्व का विस्तार आवश्यक नहीं है।

ज्योति ऋषि ने कोका, नंदकेश्वर के सिद्धांतों का समर्थन किया है। कामात्मक तिथियों को यथावत स्वीकार किया है तथा प्रबुद्धदेव ने चार प्रकार की स्त्रियों की मैथुनिक संक्रियाओं का वर्णन किया है। उन्होंने आसनों को व्यक्त किया है तिथियों के अनुसार काम शास्त्री हरिहर ने यह स्पष्ट किया कि मासिक धर्म के पहले दिन से तीस दिन तक चलता है।

कल्याणमल ने अपने ग्रंथ 'अनंग रंग' में कहा कि नारी द्वारा स्वीकार की जाती है। उन्होंने अच्छे दाँतों का वर्णन किया है, जो नारी के शारीरिक अवयवों के लिए उपयुक्त है। उन्होंने दंतोद्देश्य को सात प्रकार दंत चिह्न बताए हैं।

सबसे प्रथम मल्ल ने यौन-आवेग के विषय में कहा था कि यह दो भिन्न तत्त्वों के संयोग से उद्भूत होता है— यौन रहित आवेग और सामान्य शारीरिक संबंध। किंतु भिन्न लिंग के व्यक्ति के प्रति यौनमनोभाव भी यह पूर्ण है। मल्ल ने इन दो मनोवेगों की एक-दूसरे की घनिष्ठता से संबद्ध नहीं बताया। जैसे इसके विरोध में न्यूमप्रोटिरस, यर्वट मिलर, मैक्स केट और हैवलॉक एलिस ने उन्हें अत्यधिक संबद्ध समझा है। मनोवैज्ञानिक होप ने प्राथमिक समय की संकुलता और नारी की उत्तेजना या यौनेच्छा में अंतर बताया है। ये सभी लेखक इससे सहमत हैं कि स्फूरण या यौन स्फीति अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह तीव्र लालसा न बन जाए और शारीरिक प्रक्रिया में प्रेमानुभूति पारस्परिक रूप से चलती है। यौन-मनोवैज्ञानिक हैवलॉक एलिस ने यौन उत्तेजन तथा यौन-स्फुरण की सांभोगिक संक्रिया मूलभूत भाग माना है। यौन मनोविज्ञान में स्फुरण या उत्तेजन को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। मैथुन संक्रिया में प्रथम प्रेम क्रीड़ा में मनुष्य अधिक सक्रिय रहता है। उसी समय स्त्री भी उत्तेजित होकर सहयोग करती है और उनके जननांग क्षरित होने लगते हैं।

संस्कृत साहित्य में वात्स्यायन ने मैथुनिक क्रिया को संप्रयोग की संज्ञा दी है जो अधिकतम आनंददायक होता है। कामशास्त्री शंकर मिश्र ने वात्स्यायन के आठ संप्रयोगों की स्पष्ट व्याख्या की है। यशोधर ने अपने 'जयमंगल' में दस प्रकार के संप्रयोग बताए हैं। लेकिन दामोदर भवरम्या के संप्रदाय का उद्धरण दिया है। और आठ प्रकार के संप्रयोगों का समर्थन किया है। इस प्रकार वात्स्यायन ने पूर्णत: स्पष्ट किया है कि प्रेमी को पूरी तरह उत्तेजित करके परमानंद की प्राप्ति कराए। इस प्रकार यौन मनोजीवन का भारत में प्राचीनकाल से अध्ययन होता रहा है।

आगे हम देखते हैं कि कामदेव और रति नर-नारी के प्रतीक हैं। रति व्यक्ति का स्थायी मनोभाव है, काव्य-शास्त्र में रति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि किसी अनुकूल विषय की ओर मन के रुझान को रति कहते हैं। इसलिए नारी में रतिगंध पुरुष में मदनगंध है।

कालिदास ने अपने 'शृंगार तिलक' ग्रंथ में नारी के सौंदर्य का अद्भुत रूप व्यक्त किया है, जो सम्मोहक और आकर्षक है। वह पुरुष के हृदय में कामोत्तेजना संचारित करने में सक्षम है, क्योंकि नारी कामजा है। इसके प्रत्येक आंगिक अवयव मैं काम परिव्याप्त है। आचार्य पद्मश्री ने नारी सौंदर्य तथा शृंगार के विषय में स्पष्ट किया है—

''संभोग की तैयारी करते समय स्त्री को चाहिए कि वह पति के मनोनुकूल शृंगार करे और अंगों को लुकाती, छिपाती तथा शरमाती चले।''

रसमंजरी में आचार्य भानुदत्त ने कामदेव पर राजा का आरोप करके नारी की वय: संधि पर अपने भाव व्यक्त किए हैं—

''अज्ञात किल कामदेव धरधरपालेने काले शुभे

वस्तु: वास्तुविधि विद्यास्पति तनौ तारुण्यमेणीद्रथ: ॥''

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में नायिका को वय: संधि का मार्मिक वर्णन किया है। नायिका ने नितंबों ने कटि और चरण चंचलता

ने नितंबों में, कटि में और आँखों में चंचलता को आँखों से अपना बना लिया है तथा उसके वक्ष:स्थल के उरोज उन्नत हो गए हैं—

''श्रोणीबंधस्त्यजति तनुतां सेवते मध्य
पदम्यां मुक्तास्तरलगतयं संश्रिता लोचन्या
वक्ष: प्राप्तं कुंचसचिवतामद्वितीयंद ॥''

रीतिकालीन कवि बिहारी ने कहा है—

अपने अंग के जनि के, जीवन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन नैन नितम्ब कौ, बड़ौ इजाफा कीन॥

श्री गोवर्धनाचार्य ने अपनी आर्याशप्तशती की रचना में सौंदर्य काय केलि का अत्यंत मधुसिक्त वर्णन किया है। इसी प्रकार रसिक कवि जयदेव और विद्यापति ने अपने काव्य में शृंगार की रसधारा बहाई है।

शृंगारतिलक में कालिदास की नायिका—''वाला चाहं मनसिज भयात् प्राप्त प्रगाढक्रंपा'' के द्वारा अपनी नग्न कामन्वता और निर्लज्जता को व्यक्त करती है। नायिका घने अंधकार में अभिसार के लिए जा रही है तो उसकी सखी उससे पूछती है क्या तुझे इस अंधकार में भय नहीं लगता। उसका उत्तर देती कहती कि धनुष-वाण लेकर कामदेव मेरे साथ है—

''नत्वस्ति पुंखितशरोमदन सहाय:''

सौंदर्य में अद्भुत आकर्षण होता है। सौंदर्य के आकर्षण से जड़ और चेतन सभी अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं। कांट ने ठीक लिखा है कि ''बिना प्रयोजन के हमें आकृष्ट करता है, वही सौंदर्य है।''

कीट्स ने कहा कि सौंदर्य ही सत्य है और सत्य ही सौंदर्य है। सौंदर्य मानव के मानस में रतिभाव का उद्रेक करता है, किंतु हैवलॉक ऐलिस के अनुसार परिधानों के विकास से सौंदर्य में अधिक वृद्धि हुई है, स्त्री-पुरुष के जननांगों में सुंदरता नहीं होती और मैथुनिक संक्रिया में उसका कोई महत्त्व नहीं है। प्रकृति ने नर-नारी को वासना जन्म से ही प्रदान की है, जो यौन मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय है। आधुनिक मनोविज्ञानी मैकडूगल ने इस कामभावना को पेयङ्क्षरग कहा है, जिसमें तृष्णा और तृप्ति सहज रूप से वर्तमान रहते हैं।

काम समस्त प्राणियों की अनादि वासना है, जो मन और आत्मा में अनुस्यूत है। काम और रति का जन्म सृष्टि आरंभ में ही हुआ था। काम मानव के हृदय में आकांक्षा जगाता है तो रति उसको परितृप्ति प्रदान करती है। हमारे देश में अत्यंत प्राचीन काल से ही काम विज्ञान व अध्ययन और अनुशीलन होता रहा है, इतना सूक्ष्म विवेचन किसी देश में नहीं हुआ है। कामशक्ति के सिद्धांत के प्रतिपादक डॉ. फ्रायड का जन्म 1856 में हुआ था। उन्होंने अपनी परिकल्पना 'लिविड़ी' शब्द का प्रवर्तन किया। किंतु भारत में तो ऋग्वेद काल से काम-विज्ञान के अध्ययन की परंपरा रही है। इसकी सत्यता प्रकट करते हुए फ्लोरेंस विश्वविद्यालय के नृविज्ञान के प्रो. पोलोमोंटेनगाज ने कहा है —

''अत्यंत प्राचीनकाल से भारत के विद्वानों ने प्रेमकला की बहुमूल्य शिक्षा दी है। उन्होंने शिक्षा की इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में समझाया है। इसके परिणामस्वरूप नर-नारी के शरीर का अत्यंत सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। इन पूर्व के लोगों ने आनंद की ऊँचाइयों को किस तरह उठाना वैज्ञानिक ढंग से सिखाया, जिसको अमेरिका

ओर यूरोप के अनभिज्ञ लोगों ने कदाचित् तुलनात्मक रूप से प्राप्त किया हो।''

हिंदू कामविज्ञान के शास्त्रीय ग्रंथों की समृद्ध निधि रखते हैं, जो प्रेमकला में व्यापक और वैज्ञानिक निर्देश देता है। वे बताते हैं कि शारीरिक प्रेम के परिष्कार की एक असीम विभिन्नता है, किस तरह पुंसत्व और आनंद को बढ़ाना है तथा मैथुन के गुप्त संकटों के विरुद्ध चेतावनी दी है।

काम-कला या रति विज्ञान के अध्ययन और अभिव्यंजना की प्रक्रिया ऋग्वेद, अथर्ववेद, चरक और सुश्रुत संहिता में आयुर्वेदिक टौनिक तथा चिकित्सा का विवेचन होता रहा। वाल्मीकि रामायण और महाभारत में भी वंशपरंपरा के निर्वहन तथा सुखी दाम्पत्य जीवन का विधान हुआ है। वात्स्यायन ने नर-नारी के काम जनित आवेगों का विवेचन सभी प्रकार की सहवासिक उत्तेजनों तथा संतृप्ति के उपक्रमों को प्रदर्शित किया है। सामाजिक और व्यक्तिगत सुख, स्वास्थ्य तथा परितृप्ति के निर्देश दिए हैं। कोकशास्त्र के लेखक कोका ने वात्स्यायन का ही अनुसरण किया है। कंचिननाथ ने रति रहस्य में कोका द्वारा दिए गए वर्णन का प्रयोग किया है। आचार्य पद्श्री तथा ज्योतिश्री ने अपनी-अपनी कामात्मक अनुभूतियों का विश्लेषण किया है। पुष्यानंद ने अपने कामकला विलास में द्वारा भारत में यौन मनोविज्ञान एवं रति विज्ञान की सार्थकता को व्यक्त किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि काममूल शक्ति है, जिससे सृष्टि विकसित हुई है—

''इति कामकला विद्यादेवी चक्रक्रमादिच्का सेयम्।
विदिता येन मुक्तो भवति महात्रिपुरार सुंदरी रूप:॥''

काम और प्रेम वायु की तरह सर्वत्र व्याप्त है। काम का वासनात्मक स्वरूप अधिक देखने को मिलता है। किंतु एक प्रेरक शक्ति है, जिसके अनेक रूप संसार में दिखाई देते हैं। प्रधानतया उसके अध्यात्मक एवं भौतिक दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं। मौखिक रूप को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है, सृजनात्मक काम और वासनात्मक काम। सृजनात्मक सृष्टि का मूल रूप है मंगलमय, श्रेयस्कर अक्षर है, जो वासनात्मक से भिन्न है। दाम्पत्य तथा सामाजिक जीवन का संतुलित अवस्था में रहना ही मानवता का द्वार खोलता है। मनुष्य शक्ति है, नारी सौंदर्य है मनुष्य साहस है, नारी प्रेम है। जहाँ नर-नारी स्वस्थ और भले होते हैं, वहीं दाम्पत्य जीवन के सुख के फूल खिलते हैं, ओर स्वर्ग के देवदूत प्रसन्नता के गीत गाने आते हैं। काम यह पवित्र रूप है भगवान् की विभूति है, गीता में कहा है—

''धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽमि भरतय:।''

❑

लोकगीतों का सामान्य परिचय

लोकशब्द की व्युत्पत्ति लोकगीतों का यौन-मनोविश्लेषण करने से पूर्व लोक शब्द पर विचार करना अत्यावश्यक है, क्योंकि लोकगीत लोकमानस से संभूत है, लोक शब्द का अर्थ और विवादास्पद हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत व्याकरण के अनुसार संस्कृत की 'लोक दर्शने' धातु में 'धञ् प्रत्यय से जुडऩे से हुई है। जिसका अर्थ है—देखना। अत: 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखनेवाला' जैसा महर्षि व्यास ने कहा है—''प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नर:।''

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वत: अपने चक्षुओं से देखता है, वही उसे सम्यक रूप से जान सकता है। अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द जर्मन भाषा 'वोल्फ' से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ था 'सामान्य व्यक्ति' किंतु आगे चलकर कवियों इसे मानवतावादी स्वर दिया। पुनर्जागरण के बाद जीवन के हर क्षेत्र मैं वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश हुआ। किंतु हमारे देश में ऋग्वैदिक काल से 'लोक' शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा है। ऋग्वेद में इसका व्यवहार जाति तथा स्थान के रूप में प्रयुक्त किया है—लोकां अकल्पयुक्ता:। उपनिषदों में इसे सर्वत्र व्याप्त माना है—'अपंभूतोलोक:' तथा पाणिनी ने अष्टाध्यायी में 'लोक तथा सर्वलोक शब्दों का उल्लेख किया है। महर्षि वाल्मीकि ने 'मतलोकेषु निवत्स्यसि' कहा है।

रामायण ओर महाभारत में जनसमुदाय तथा स्थान विशेष के रूप में हुआ है। पाणिनी पतंजलि तथा भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग सामान्य जन के संदर्भ में ही किया है।

प्राकृत, अपभ्रंश और भक्ति साहित्य में यात्रा करता हुआ यह शब्द कबीर की वाणी में 'लोका मति के भोरा' होने के कारेण 'गतानुगतको लोक:' के रूप में लोकवेद के पीछे चलता आया है। तुलसी के दलों से भाव गंधित होकर संतवाही कार्य में प्रवाहित हो रहा है।

लोकगीत—लोकगीत लोकजीवन की सहज और सरस अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं की लोकवाणी में मार्मिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत पारदर्शी जीवाश्म है, जिनमें लोक मानव के रीति-रिवाज, मान्यताएँ, धारणाएँ, हर्ष-विषाद तथा चिराचरति आचरण प्रतिबिंबित होते हैं। ये गीतों की घुमंतु संतानें हैं, जो वायु की भाँति सर्वत्र व्याप्त है। धूप की नाई सर्वत्र फैले हैं। ये आवेगमय भावों का सहज और अकृत्रिम उच्छल होता है। रागात्मक अनुभूति इसका विशिष्ट तत्त्व है। इनमें स्वर-संगीत और लय तथा धुन संगीत में एकरूपता नहीं होती है, किंतु धुन बहुलता होती है। किंतु उसमें मधुरता और सरसता का अभाव नहीं होता है। भावों और संवेगों के पीयूषदर्शी झरने फूट पड़ते हैं। लोकगीत धरती के गीत हैं, खेत की सौंधी माटी के स्वर है। ये विजय के गीत हैं। मंगल उत्सव के गीत और हैं हमारी आशा के गीत हैं। हर्ष की हिलोर, सुख के कल्लोल। जब ढोलक, मँजीरा और मृदंग थाप पर लोकगायक नर-नारी भावविभोर होकर आते हैं तो चरणों के घुँघरू भी छनक उठते हैं। जवानी अँगड़ाई लेती है, यौवन का मद छलक उठता है और हृदय में प्यार का ज्वार उमड़ता है। श्री फ्रांसिस ने लोकगीतों का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

''लोकगीतों का महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें अकृत्रिम काव्य- भावना उपलब्ध होती है। वे परंपरा की भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करते, वरन् जन-समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं। उनमें किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती है, जो वस्तु जैसी है, उसका वर्णन वे उसी रूप में करते हैं, वे स्वतत्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश खेला करता है।''

इस कथन के अनुसार लोकगीतों की निम्न विशेषताएँ हैं—

1. लोकगीत लोक जीवन के सहज उच्छलन होते हैं, अत: उनमें किसी प्रकार की अभिव्यंजना की कृत्रिमता नहीं होती।

2. लोकगीत में विषय यथातत्य चित्रण होता है, क्योंकि वह निर्बंध होता है—स्वच्छंद और मुक्त।

3. शास्त्रीय छंदों के वंधों से उन्मुक्त होते हैं। अत: उनमें वायु की भाँति प्राणदायिनी शक्ति और सूर्य के आलोक के समान उल्लास और आनंद उद्दीप्त होता है।

बृजक्षेत्र में गाए जानेवाले लोकगीत। का स्वर देखिए—

''तेरी बजति मुरलिया देखिके नाचन चली ओ साँवरे-2

गरमी ऋतु आई ओ। साँवरे-2

तेरी लाल विजनियाँ देखि के ढोरन चली आई ओ साँवरे।''

कारलायल ने लोकगीत की परिभाषा करते हुए कहा था—''लोकगीत स्वर्गीय मधुर गीत की नन्ही-नन्ही ओस की बूँदें हैं, प्राणों के रस से सिक्त।''

जैसे ओस की बूँदें सुंदर, मृदुल और तरल होती हैं, उसी प्रकार लोकगीतों में अकृत्रिमता, मृदुता और तरलता होती है, रसमय।

एलैक्जैंडर स्मिथ ने लोकगीतों का स्वत: स्फूर्त बताते हुए कहा है—

''जैसे बसंत में वृक्षों पर नई पत्तियाँ फूटती हैं, वैसे ही लोकजीवन में गीत खिलते हैं, लोकजीवन की ऐसी ही प्रकृति है कि उसमें गीत खिला करते हैं।'' ब्रज के लोकगीत लोकजीवन के बोलते चित्र हैं। वाक्-परक मूर्तियाँ। वास्तव में ये गीतों की घुमंतु संतानें हैं, जो हरी-भरी झाडिय़ों, वन-उपवन, खेत-खलिहानों, कालिंदी के फूलों, यमुना के कछारों, करील के कुंजों में फाल्गुन के रंगों में रँगकर होली के रसिया बनकर, सावन की फुहारों में भीगी मल्हार बनकर और शारदीय चाँदनी में सर्वहृदया संस्थिता देवी के छन बनकर सर्वत्र बिचरते हैं। ये लोकगीत अतीत की थाती हैं। संस्कृति की विरासत हैं और हैं इतिहास के न्यास।

मल्हार—पावस में बादल घिरते हैं, गरजते और बरसते हैं। वर्षा की फुहारों में झूलों की रमक में पुरुष और नारियाँ मल्हार गाते हैं। बृज को मल्हारे सरस, मधुर और हृदयावर्जक होता है।

लोकगीतों का वर्गीकरण—लोकगीतों का लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनमें लोक मनोरंजन की अद्भुत क्षमता होती है। इसी आनंद प्राप्ति की क्षमता के कारण लोकजीवन में इनकी बहुत प्रचुरता और व्यापकता है। इसीलिए ये लोकगीत व्रत, पर्व, त्योहारों और मांगलिक उत्सवों एवं ऋतुओं में गाए तथा सुने जाते हैं। इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

1. संस्कारों के गीत—भारत धर्मपरायण देश है, जहाँ जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत जीवन में सोलह संस्कारों के संपादन का प्रचलन है। ब्रज लोकजीवन में जन्म, मुंडन और यज्ञोपवीत संस्कारों को अधिकतर मनाया जाता है, किंतु विवाह संस्कार का अत्यधिक महत्त्व है। कोकिल कंठी बृजांगनाएँ जन्मोत्सव पर बड़े हर्ष और उल्लास के साथ गाया करती हैं—साहिल, सोहर। कंगनबा माँगे ननदी ललना की बधाई और आगे—

''लाई-लाई नंद के द्वार, बधाई मालिनियां।''

विवाह-संस्कार में तो गीतों के झरने फूट पड़ते हैं। नारी के पाँव के घुँघरू छनक उठते हैं। पायलें मचल उठती हैं। उनके नृत्य मैं यौवन का उभार, पतली कमर की लचक, नितंबों का भटकना अत्यंत मनमोहक हो जाता है, रसमय और कामोद्दीपक। बड़े मादक होते हैं ये लोकगीत ''गोरी चली ससुरारि अंग याके महकन लगे।''

ब्रजलोक जीवन में गौने की विदा का प्रचलन है, गौने के अवसर पर रसीले गीत गाए जाते हैं—'गौने बारी रैनि

कटन दै मेरे रसिया।'

इसी प्रकार यौवन के मद में छकी काम-प्रिया युवती अपनी सहेली से कामातुर होकर पूछती है—

''जोवन एड़ी की धमकते धँसक्यौ जाय
भाएली गौनों कब होयगौ।''

ऋतुओं के गीत—ब्रज में ऋतुएँ आती हैं, इंद्रधनुषी छटाएँ लेकर। ग्रीष्म ऋतु आती है, अत्यंत उत्ताप के साथ, लू के तप्त झोंके लेकर, आग बरसाती, धरा की हरियाली को सुखाती। फिर भी गंगा दशहरा के पर्व पर नारियों के कंठ से अमृत बरसता है। घनी अमराइयों में बसंत की रानी कोयल पंचम स्वर में कूक उठती है, रात्रि में गरमी के कारण नारी के कमनीय अंग सिहर उठते हैं।

बरसात आई कि आकाश में बादल अपनी दीवानी बिजली के साथ नाचने लगते हैं और मयूर मुग्ध होकर नाचने लगता है। मयूरी भाव मग्न होकर उसके झलमल नृत्य को अपनी सुकोमल प्यासी आँखों से निहारती रहती है। ऐसी भीनी-भीनी ऋतु में 'बदरिया बरसे श्याम नहीं आए।

''बागों में बरसे, बगीचों में बरसे।
मलिनियाँ तरसे स्याम नहीं आए॥''

शरद त्रत्तु का आगमन हुआ, आकाश स्वच्छ हो गया, चाँदनी चंद्र के साथ मुसकराने लगी। नौता और देवी के गीत वातावरण में तैरने लगे।

प्रकृति को अनोखे छटा में नर-नारी के हृदय में अनंग अँगड़ाई लेने लगा। उनके शरीर रति-केलि के लिए कसमसा उठे। कामिनी चंद्रहास देखकर कहती है—

''छिप जा रे रेनि के चंदा,
पिया बिन नींद नहीं
जैसे रे तैसे मैंने सेज सजाई
इतने में आ गई सासु।''

वसंत आता है मदन की बारात लेकर चारों ओर प्रकृति मादक हो उठती है। लताएँ रंग-बिरंगे फूलों से लद जाती हैं। शीतल और मंद पवन फूलों की सुगंध पीकर उन्मादित होकर बहती है नर-नारी के अंगों का स्पर्श करके वह उनमें काम-वासना जाग्रत् करती है। सारा वातावरण अनंग के रंग में रँग जाता है। पुरुष-नारी के साथ क्रीड़ा करने को आतुर हो उठता है। नारी उसे धैर्य रखने की मनुहार करती है—

''मोहि पीहर में मति छेड़ै रे बालम,
धरि लै धीर जिगरिया में॥
तेरी ससुरारी माइकौ है मेरौ
अरे परिजाय दागु घँघरिया में॥''

होली रंगों का त्योहार है, मस्ती का त्योहार है और है कामोत्सव। नर-नारी की प्रीति का महोत्सव। नारी के नयन रसीले हो जाते हैं, कमनीय अंगों में रति गंध तैरने लगती है और उसके यौवन का मद छलक उठता है। पायल गाने लगती है तो घुँघरू ताल देते हैं और वह मादक स्वर में गा उठती है—'होरी खेलन आयौ स्याम आजु याहि रंग में बोरौरी।'

3. व्रत-पर्व और त्योहारों के गीत—ब्रज लोकजीवन में व्रत-पर्व और त्योहारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ 'सातवार नौ त्योहार' की परंपरा चिराचरित है। ब्रजवासिनी जनता का जीवन धर्म से अनुप्राणित है। नारी तो धर्म की

साक्षात् प्रतिमा है। वह व्रत और पर्वों में अधिक आस्था रखती है। सावन में तीज, नाग पंचमी तथा सनूने-रक्षाबंधन का त्योहार प्रकृति को हरीतिमा के साथ धरा पर उतरते हैं। तीज का त्योहार नारियाँ उत्साह के साथ मानती हैं—

''नन्ही-नन्ही बुँदियाँ रे, तीजों का मेरा झूलना।''

रक्षाबंधन तो रंग-बिरंगे धागों का त्योहार। भाई -बहन के प्यार का त्योहार है आकर्षक और मनोरम। दीवारों पर 'सोना' याद रखे जाते हैं, जो श्रवण कुमार की दिलाते हैं इस त्योहार को मनाने की परंपरा है।

ब्रज में लोकगीतों की मणियाँ सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं। इन लोक गीतों की निधि को सहेजना परमावश्यक है।

दीपावली का त्योहार आलोक का त्योहार हैं, लक्ष्मी और गणेश की पूजा का त्योहार है, ब्रजवासी सानंद इस त्योहार को मनाते हैं तथा गोवर्धन की पूजा भी की जाती है। इन त्योहारों से संबद्ध लोकगीत गाँव-गाँव में बिखरे पड़े हैं। गोवर्धन का अत्यधिक महत्त्व है। गोवर्धन नामक स्थान में गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करने नर-नारी जाते हैं और गाया जाता है—

''मैं तो गोवर्धन कूँ जाऊ मेरे वीर, नाएँ मानै मेरौ मनुआं''

होली का त्योहार, रंगों का त्योहार, बहारों का त्योहार बृजमंडल में उत्सव प्रिय जनता बड़े धूमधाम से मनाती है। यह फागुन के महीने में वसंत की मधुरता और रंग लेकर आता है। जवानी अँगड़ाई लेने लगती है, बूढ़े भी जवान हो जाते हैं—हर्ष और उल्लास में। ढोल, ढप, मृदंग, मजीरा आदि वाद्यों के साथ गीत गाए जाते हैं, जिन्हें 'होरी' कहते हैं। होरी लोकगीतों की बृजलोक जीवन में प्रभूत संपदा है। गाँव-गाँव और गली-गली में जन-जन के कंठ से गीतों के स्वर समस्त वातावरण रसमय कर देते हैं—

''फागुन के दिन आए, कन्हैया होरी खेलै तो बाहर आ।''

विस्तार भय से 'होरी' लोकगीतों को यहाँ प्रस्तुत करना संभव नहीं है।

4. विविध जातियों के गीत—ब्रजलोक जीवन में विविध जातियाँ समाहित हैं, जो सभी त्योहार और पर्वों पर सामूहिक रूप से बिना किसी भेदभाव के गीत गाती हैं। किंतु उन जातियों के अपने-अपने लोकगीत हैं। अहीरों का 'जस' अत्यंत लोकप्रिय गीत है, जिसे वे कान पर हथेली रखकर ऊँचे स्वर से गाया करते हैं। इनमें देवी-देवताओं के 'जस' गाए जाते हैं। इनमें धर्मधारी मैकासुर के 'जस' अधिक प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त वे गाथा परक 'साखा' भी गाया करते हैं। मिलन चलीरे बनिसा। मिलन-चली बीरन तें बनिसा मिलन चली।''

ब्रज में गूजर नामक जाति निवास करती है, उसका भी 'गोठ' नामक विशिष्ट लोक गीत है। यह लोक गीत भी प्लुप्त स्वर पर या कहिए ऊँचे स्वर से गाया जाता है। इसको समान जाति के व्यक्ति गाकर और सुनकर आनदित होते हैं।

''ब्रजलोक जीवन में 'धोवी' जाति दलित जाति में आती है। वह हुपक वाद्य पर नाच-नाचकर 'लौहचारी' लोकगीत लय और तान के साथ गाती हैं। इसी प्रकार जाटव 'जागिन्न' के लोक गीत गाते हैं तथा देवी-देवताओं भूत-प्रेत और खईसों को रिझाने तथा उनके प्रीत्यर्थ गाते हैं—

''खेलै पोखरिया की पारि रे, मैरो नवल खईसरा''

ब्रज में थाली के लोकगीत अधिक चर्चित हैं। इनमें 'भत्री' लोकगीत बहुलता से गाया जाता है—

''मांते जंबू चलौ घाट गंगा के आयौ,
पानी पियौ अधाय, कूटि गंगा में नहायौ।''

5. देवी-देवताओं के गीत—ब्रजमंडल देवधाम है। यहाँ अनेक देवी-देवता मंदिरों, मठियों तथा धानों और पीपल के वृक्ष पर विराजते हैं। ब्रजवासिनी जनता इन अशरीरी देवी देवताओं की पूजा-अर्चना करती है। सभी

मांगलिक अनुष्ठानों पर इनके प्रीत्यर्थ भजन, कीर्तन तथा 'छन' छंद लोग गाया करते हैं। लोक में ऐसा विश्वास है कि देवी-देवता मनोकामना को पूर्ण करते हैं तथा धन-धान्य, दूध-पूत की रक्षा करनेवाले हैं। शक्तिरूपा माँ दुर्गे की जात करने विविध स्थानों पर जाते हैं, जैसे नगरकोट वारी, करोली वारी तथा 'चौंडरे' वारी देवी आदि। व्राजवनिताएँ देवी के प्रीत्यर्थ 'छन' गाया करती हैं सुकोमल स्वर में—

''हम बालक नादान भवानी तेरी सेवा न जानी।''

ब्रज में देवी दुर्गा से संबद्ध लाँगुरिया लोकगीत अत्यधिक लोकप्रिय है। ब्रज के लोकगीतों में लाँगुरिया को देवी का पुत्र कहा गया है, जो देवी की जात करनेवाली नारियों का मार्ग-दर्शन करता है और छेड़-छाड़ भी करता है। किंतु बुंदेली के देवी लोकगीतों मे इसे देवी का भाई बताया गया है। जो भी हो, वह बड़ा रसिक, छैल और रसिया है। लाँगुरिया नारियों से देवर की तरह व्यवहार करता है। ब्रजनारी उससें मनुहार करती है—

''देवी मय्या कौ लगौ है दरबार
लाँगुरिया चलै तो दरसन करि आवें।''

ब्रज लोकजीवन में भुमियाँ, हरदौल, जाहर पीर, देव बाबा तथा धर्मधारी मैकासुर के गीत प्रचलित हैं। यहाँ उनका वर्णन प्रासंगिक नहीं है।

लोकगाथा—लोकगीत मुक्त काव्य है, लोकगाथा प्रवधात्मक। लोकगीत लोकमानव की सहज अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है, जो लय, धुन और संगीत से सिक्त होती है। लोककवि की यह आत्माभिव्यक्ति है। किंतु लोकगाथा गायन, वादन और नर्तन के साथ धारावाहिक कथा गीत है, वैलेड लोकगाथा वह सजीव स्फूर्तिदायक तथा उत्तेजनात्मक कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो।'' यह आख्यानात्मक लोकगीत का एक प्रकार है। प्रसिद्ध लेखक चाल्स लैंब ने कहा कि लोकगाथा वैलेड राष्ट्रीय मानस के वाचिक चित्र हैं।

महाकवि लॉगफैलो ने परिभाषित करते हुए कहा है—''लोकगाथाएँ गीतों की घुमंतु संतानें हैं, जो हरित झाडिय़ों, पत्रयुक्त वीथिकाओं तथा साहित्य की पगडंडियों में संभूत हुई हैं।

लोकगाथा लोकगीत का ही एक रूप है, जो लंबे कथानक से युक्त गेय गीत है। लोकगीत आकार में छोटे होते हैं, जिनकी प्रधान विशेषता गेयता है। कथानक अभाव होता है। लोकगाथा का आकार बड़ा होता है, जिसमें कथानक के साथ गेयता नर्तन और वादन भी होता है।

लोकगाथाएँ लोक मनोरंजन के लिए गाई जाती है, किंतु दूरदर्शन और सिनेमा हमारी संस्कृति पर कुठाराघात है। इनका सहेजना, संकलन करना आवश्यक है।

❑

लोकागाथाओं की विशेषताएँ

लोकगाथा यह भारतीय गीत काव्य को महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह अमरूक शतक और गाथा सप्तशती की परंपरा में आती है। आख्यानपरक लोकगीत है। इनकी विशेषताएँ निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—जैसा कि कृष्णदेव उपाध्याय ने स्पष्ट किया है।

1. रचयिता का अज्ञात होना—ब्रज की लोकगाथाओं और लोकगीतों के रचयिता के नाम का पता नहीं चलता है। हीर-राँझा, गोपी चंद, भरथरी, जाहरपीर, ढोला मारू, हरदौल, चंद्रावती की लोकगाथा, नवलदे आदि की लोकगाथाएँ ब्रज क्षेत्र में उपलब्ध हैं। इनके कहीं अंधकार में खो गए हैं। यह इनके रचनाकार तो निश्चित है कि इन गाथाओं का कोई-न-कोई रचनाकार अवश्य होगा, जिसने उमंग और उल्लास में मस्त होकर अपने साथियों से मिलकर रचना की होगी। ब्रज के लोकगीतों तथा लोकगाथा के रचनाकार अपना नाम संभवत: बताना उचित नहीं समझते थे।

2. मूलपाठ का अभाव—ब्रज की लोकगाथाओं के मूलपाठ नहीं मिलते हैं, क्योंकि समय और परिस्थितियों के अनुसार लोकगायक फेर-बदल करते रहते हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि इनका कोई लिखित संकलन नहीं रहा। ये तो संपूर्ण समाज, समुदाय या जाति में कंठ-से-कंठ तक तैरती रही हैं, अपनी गेयता और मधुनता के कारण। लोकगाथाओं की मौखिक परंपरा शताब्दियों से गतिमान रही है। इसलिए इनका मौलिक पाठ उपलब्ध नहीं होता। राबर्ट ग्रेम्स ने ठीक ही लिखा है—''किसी विशिष्ट गाथा का मूल पाठ नहीं होता। गायक अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन करते रहते हैं। अतएव किसी पाठ को विशुद्ध नहीं माना जा सकता?''

3. संगीत तथा नृत्य साहचर्य—संगीत मानव हृदय को आनंद से लवरेज कर देता है, जो लोकगाथा में सरसता और मधुरता का महत्त्वपूर्ण उपादान है। मृदंग और ढोल की ताल पर लोकगायकों के चरण थिरकने लगते हैं। संगीत के बिना गाथा पूर्ण नहीं मानी जा सकती। ब्रज लोक जीवन में पावस ऋतु में आल्हा की गाथा ढोलक, मजीरा और चिमटा के साथ अल्हैत उछल-उछलकर गाते हैं, जिससे वीर रस का समाँ बँध जाता है। आनंद के झरने फूट पड़ते हैं। गोपीचंद, भरथरी तथा जाहरपीर की गाथा जोगी अपने 'डमरू' और सारगी के स्वर के साथ गाते हैं।

हरदौल की गाथा 'भोपा' लोग अपने मधुरिया बेन पर गाँव-गाँव गाते फिरते हैं। इस प्रकार लोकगीत तथा गाथाओं से संगीत का घनिष्ठ संबंध है।

4. स्थानीय पुट—लोकगाथा और लोकगीत में स्थान का पुट अवश्य रहता है। क्योंकि लोकगाथाएँ विभिन्न स्थानों पर यात्रा करती रहती हैं। ब्रज की लोकगाथाएँ हिंदी की सहेली भाषाओं में तैरकर पहुँचती हैं। ब्रजभाषा की ये गाथाएँ राजस्थानी, कैरवी, कन्नौजी, बुंदेली, भोजपुरी तथा मैथिली आदि लोकभाषाओं के फेर-बदल के साथ अपना अस्तित्व बनाए रखती है और अपने कलेवर में वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान तथा आचार-विचार समेटे रहती है।

5. मौखिक प्रवृत्ति—लोकगाथाएँ सदैव मौखिक परंपरा में कुंठानुकंठ लोकजीवन में प्रचलित रही हैं। ब्रजलोक जीवन में आल्हा, मल्हारें तथा गाथाएँ सदियों से जीवित हैं। गाथा को लिखने से उसकी मौलिकता और सजीवता नष्ट हो जाती है। मौखिक रूप में ही उसका माधुर्य हृदयवार्जक रहता है।

6. उपदेशात्मकता का अभाव—लोकगाथा में नैतिक आचरणों के उपदेश की भावना नहीं होती, क्योंकि उनका उद्‌देश्य तो आनंद का विधायक होता है। उपदेशों के कारण उनकी मधुरता में व्यतिरेक हो जाता है। आल्हा और ढोला की गाथाएँ साहस, शौर्य, माता की आज्ञापालन और देश भक्ति से समन्वित होती है। कहीं-कहीं पर

पुनीत आदर्शों तथा सतीत्व की प्रवृत्ति देखी जाती है। किंतु फिर भी लोकगाथाओं में आनंद का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

7. स्वाभाविकता—लोकगाथाओं में भाव की भागीरथी ही प्रवाहित होती है कला की कालिंदी नहीं। उसमें न तो अलंकारों की योजना होगी और शास्त्रीय छंद-विधान, भाषा की सरलता होती है। यह लोकानुगामिनी होती है। यह लोकानुगामिनी होती है। यह लोक-काव्य है। रसों का विधान स्वत: ही हो जाता है। आलंबन, उद्दीपन, संचारी भाव, विभाव, अनुभाव अपने आप ही लोकगाथा को रस सिक्त कर देते हैं। स्वाभाविकता और अकृत्रिमता लोकगाथा की आत्मा है सो भी भावगंधित।

8. व्यक्तित्वहीनता—काव्य में कवि का व्यक्तित्व बोलता है, किंतु लोकगाथा में उसका सर्वथा अभाव होता है। लोक-गायक निरपेक्ष भाव से अपने आंतरिक कल्लोल को स्वरति की भावना को त्याग भावों से व्यंजित करता है, कहीं भी अपने अस्तित्व को नहीं जोड़ता। वह अपने निजी विचार नहीं संयुक्त करता और न किसी की आलोचना करता है। उसे तो अपना और लोक का अनुरंजन करना होता है। ब्रज की लोकगाथाओं में लोककवि सर्वथा अलग ही रहता है।

9. टेक पदों की पुनरावृत्ति—लोकगीतों तथा लोकगाथाओं की पुनरावृत्ति सर्वत्र देखी जाती है। लोकगीतों में टेक पदों को जितनी बार दुहराया जाता है, उतना ही उनका आनंदवर्धन होता जाता है। लोक समुदाय इनको सुनकर मंत्र-मुग्ध होकर झूमने लगता है और तालियाँ बजाकर अपना हर्ष प्रकट करता है। यथा—

''तेरी बजति मुरलिया देखि के, नाचन चली आई ओ साँवरे।''

10. लंबा कथानक—लोकगाथाओं का कथानक लंबा होता है। प्रारंभ मध्य तथा अंत की यात्रा को पार करके श्रोता को आनंदविभोर कर देता है। बीच में कथा का व्यतिरेक आनंद कौतूहल को कम कर देता है। जाहर पीर, हरदौल आल्हा, ढोला आदि की लोकगाथाएँ श्रोता के मन को बहुत समय तक रमाए रखती है। अन्यथा अरुचिकर हो जाती है। कथानक को गतिमान बनाए रखना ही गायक की कलात्मकता है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति—यहाँ लोकगाथाओं के काव्यात्मक स्वरूप का अध्ययन करना ही हमारा अभिप्रेत है, किंतु यहाँ पर उसकी प्रकृति को समझने के लिए उसकी उत्पत्ति तथा प्रकारों पर विचार करना आवश्यक है। यहाँ संक्षेप में ही सामान्य परिचय दिया जा सकता है—

1. विलियम ग्रिम का समुदायवाद—जर्मनी जैकब ग्रिन ने कहा है लोककाव्य का निर्माण स्वत: होता है। किसी विशेष रचयिता के द्वारा नहीं। यह सामूहिक रूप से लोक-जीवन की मामक अनुभूतियों का अभिव्यंजन है। यह मांगलिक अनुष्ठानों, पर्व, त्योहारों और उत्सवों पर सामूहिक रूप सुनी जानेवाली गाथाएँ हैं। यहाँ भावों की हिलोर में जनसमुदाय कड़ी से कड़ी जोडक़र रचना करते हैं। अत: ग्रिम महोदय ने इसे समुदायवाद की संज्ञा दी है।

2. श्लेगल का व्यक्तिवाद—श्लेगल के अनुसार किसी काव्य का रचनाकार कोई-न-कोई विशिष्ट व्यक्ति होता है, जिस प्रकार कलाकृतियों का कोई सृष्टा होता है। लोकगाथाओं की सृष्टि में अनेक लोककवियों का हाथ अवश्य रहा है। क्योंकि कोई कृति स्वयं संभूत नहीं है। इसी सिद्धांत पर व्यक्तिवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ।

3. स्टेंथल का जातिवाद—किसी जाति के व्यक्ति आपस में मिलकर किसी उत्सव पर भावतिरेक में अपने मनोरंजन के लिए लोकगीतों की सृष्टि करते हैं, उनमें उनकी धारणाएँ, मान्यताएँ, रीति-रिवाज और आदर्श प्रतिबिंबित होते हैं। उनमें उनके लोकरंजक भावों का उच्छलन होता है। लोकगाथा किसी विशेष गायक की रचना नहीं होती वह तो समग्र जाति की संपदा है।

4. विशप पर्सी का चारणवाद—लोकगीतों के संग्रहकर्ता विशप पर्सी ने लोकगाथा के आधार पर उनकी

उत्पत्ति के विषय में चारणवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका मानना था कि प्राचीन इंग्लैंड में भाट सारंगी के स्वर के साथ अपने जीविकोपार्जन के लिए घूम-घूमकर गीत गाते थे। इनमें धनी व्यक्तियों की प्रशस्ति के साथ लोकगाथाओं की रचना के द्वारा लोकमानव का मनोरंजन करते थे। यही लोकगाथाएँ लोकजीवन का कंठहार बन जाती थीं। जोसेफ रितसन और उपन्यासकार वाल्टर स्कॉट ने भी इसी मत का समर्थन किया है। प्रो. पाल ने ठीक ही कहा है—''चारण गीतों की रचना करते हैं और अपनी जीविका के लिए गाँव-गाँव गाते फिरते हैं।'' भारत में 'रासो' साहित्य के रचनाकार विद्वान् भाट ही थे। चंद्रबरदायी भाट ने पृथ्वीराज रासो की रचना की थी।

5. व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद—प्रोफेसर चाइल्ड का मत है कि जिस प्रकार किसी काव्य का रचनाकार होता है, उसी प्रकार इन लोकगाथाओं की रचना किसी विशेष व्यक्ति द्वारा की गई है। किंतु उनके व्यक्तित्व का कोई महत्त्व नहीं है। किसी विशेष व्यक्ति द्वारा गाई गई लोकगाथाओं का समयानुकूल परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा है। यही जन-समुदाय की विरासत बन गई।

6. समन्वयवाद—डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर व्यक्त किया है, सभी सिद्धांत सर्वमान्य नहीं हैं। उनमें विद्वानों ने अपने विचारों का समावेश किया है। उनके सिद्धांतों मैं आंशिक त्रुटि रह गई है। किंतु डॉक्टर उपाध्याय ने सभी का अनुशीलन करके समन्वयवाद का प्रतिपादन किया है। ब्रज में ढोला मारू की गाथा। जाहरपीर, विशेष रचनाकारों द्वारा रची गई है। अहीरों, का 'जस' की 'गोठ' जाति-विशेष के गीत है, लोकगाथाएँ हैं। होली के होली गीत रूप से गाए जाते हैं। चंद्रबरदायी और जगनिक की आल्हा समूचे लोकजीवन की संपदा है।

7. कामात्मकवाद—हमारे विचार से प्रत्येक लोकगाथा में कामात्मक अनुभूतियों, आवेगों को जगाने तथा नर-नारी को रिझाने के उपक्रम गायन-वादन और नर्तन के द्वारा किया जाता है। हमारी शारीरिक क्रियाएँ नियमित रूप से चलती रहती हैं। अत: हमारी शारीरिक पद्धति में छंद अंतर्निहित है, जो उत्साहवर्द्धक और उत्तेजक प्रभाव लोकमानस पर प्रभाव डालता है। यौन आकर्षण में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि नर के गाने से मादा और मादा के गाने से पुरुष आकर्षित होता है। इस संबंध में गहन खोज की है। पुरुष हरबर्ट स्पेंसर का कहना है—विपरीत लिंग को यौन मिलन के लिए नारियाँ नाचती गाती है। कपोत और कपोती की 'गुटुरूगूँ' स्पष्ट उदाहरण है। संगीत और लोकगाथाओं का सहज रूप उद्भूत हुआ है। स्वीडन के भाषा वैज्ञानिक स्परेबेर का मत है कि यौन वृत्ति से ही भाषा की उत्पत्ति हुई है। हमारे विचार से भाषा के साथ ही गीतों की उत्पत्ति हुई होगी, जो आगे चलकर लोक गीतों और लोकगाथाओं में परिणत हो गया। चतुर्भुज की मधुमालती मैं आया है—

''काम अस पूरन अवतारी, याकी अकथ कथा है न्यारी।''

लोकगाथाओं के प्रकार—लोकगाथा लोकजीवन का मौखिक चित्र है। ब्रजलोक जीवन की चित्रवोथिक में लोकगाथाओं के निम्न चित्र सजे हैं। अत: उनका वर्गीकरण करना आवश्यक है। फ्रॉसिस गूमर ने गाथा के छह प्रकार माने हैं—

1. प्राचीन गाथाएँ, 2. कौटुंबिक गाथाएँ 3. आरण्यक ग्रीन गाथाएँ, 4. पौराणिक गाथाएँ, 5. अलौकिक गाथाएँ, 6. सीमांत गाथाएँ। लोक-साहित्य की भूमिका में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने तीन प्रकार माने हैं— 1. वीर गाथाएँ, 2. प्रेम गाथाएँ, 3. रोमांचक गाथाएँ।

इन गाथाओं में कथांश और गेयता वर्तमान रहती है। जो वर्णनात्मक है। मौलिक और विस्तृत है। इनमें बैले के साथ नृत्यांश भी रहता है। उन्हें गीत कथा, लोकगाथा और प्रबंधगीत भी कहते हैं।

1. वीर गाथाएँ—ब्रजलोकसाहित्य में ऐतिहासिक वीरों की गाथाएँ मिलती हैं। जिनमें उनके पराक्रम, शौर्य

तथा प्रेम का वर्णन किया गया है। इनमें आल्हा-ऊदल, जाहरपीर, ढोलामारू, राजा नल, गोपीचंद, भरथरी आदि की गाथाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। इन गाथाओं में प्रेम का पुट रहने के कारण कामात्मक अनुभूति तथा आवेगों को समाहित किया है।

2. पौराणिक गाथाएँ—ब्रजक्षेत्र में राधा-कृष्ण की पौराणिक लोक गाथाएँ सर्वत्र व्याप्त हैं जिनमें कृष्ण के पराक्रम के साथ राधा-कृष्ण की प्रीति का अद्‌भुत चित्रण मिलता है। भारतीय पौराणिक गाथाओं में कृष्ण महानायक बन गए हैं। उनका कीर्तिमान विविध लीलाओं में अभिव्यक्त हुआ है। लोकगीत मनोमुग्धकारी है। यथा—''बनि गए नंदलाल लिलहारी लीला गुदवाय लेउ प्यारी। अलौकिक पौराणिक गाथा है।

3. प्रेमगाथाएँ—प्रेम जीवन का मधुर रहस्य है। लोकगाथाओं में पीयूष बहता है। इनमें संघर्ष भी है तथा संयोग और वियोग के ताने अनुस्यूत हैं, ये लोकगाथाएँ ब्रजलोक जीवन में ढोला मारू, हीर-राँझा, पूरन मल दमयंती, हरी-अभनि और सिड़रिया की गाथाएँ गाई और सुनाई जाती हैं।

यमी का संवाद के में काम के रंग में रंजित है। यमी कहती है—

''मैं यमी यम के प्रेम मैं अभिभूत हूँ, चाहती हूँ कि उसके साथ एक ही शय्या पर विश्राम करूँ।''

और आगे अरपनी कामाग्नि से संपीड़ित होकर कहती है—

''मैं प्रेम से प्रताड़ित हूँ, इतने शब्द कहती हूँ। मेरे निकट आओ और मुझे अपने घनिष्ठ आलिगन में भरली।''

काम जीवन की सशक्त संचेतना है। प्राणी इससे विमुक्त नहीं हो सकता। यह जन्म के साथ ही आई है। पूरनमल की गाथा में रानी कहती है—

''कंठ लगाय लै रे पूरनमल, आइ जा मेरी सेज पै।''

सभी प्रेमगाथाएँ सरस और हृदयवर्जक हैं। यहाँ सबका उल्लेख संभव नहीं है।

वास्तव में लोकगाथाएँ लोककवि से प्रणीत गीत है, जो मस्तिष्क को झंकृत करते हैं और भावनाओं को सुकोमल करते हैं तथा नैतिक उपदेश की अपेक्षा लोकमानस पर गहरा प्रभाव डालते हैं। उनका गायन, वादन और नर्तन लोकजीवन को आनंद से सिक्त करते हैं। ये लोकानुरंजन के अद्‌भु स्रोत हैं, जो मन और प्राण पर घनीभूत होकर छाए रहते हैं। आनंद जीवन की चरम अनुभूति है। ठीक ही है—

''आनंदेन जातानि जीवंति''

लोकगाथाओं का महत्त्व—लोकसाहित्य मैं लोकगाथा का महत्त्वपूर्ण स्थान यह लोकसाहित्य की मनोरम विधा है, जो लोकानुरंजन के साथ मानवीय मूल्यों की अमूल्य निधि है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषाथों के संरक्षण में अहम भूमिका निर्वहन करती है। लोक का विश्वास है—धर्म-साधना से अर्थ का लाभ होता है। काम जीवन की प्रेरक शक्ति है, जिससे समग्र विश्व के कार्य संपादित होते हैं। ब्रज की लोकगाथाओं में जाहरपीर, गोपीचंद भरथरी, हरिश्चंद्र मोरध्वज सरमन, ध्रुव-प्रहलाद, शिव का विवाह, जानकी मंगल, रुक्मिणी मंगल, गंगा व्याहुलौ आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। ये हमारे देश की थाती है, संस्कृति की विरासत है और हैं हमारे इतिहास का न्यास।

ये जातीय विद्‌वेष को मिटाकर सामाजिक एकता, देश की अखंडता, विश्वबंधुत्व की भावना को पुष्ट करने बलवती ऊर्जा प्रदान करती हैं। असभ्य को सभ्य अनैतिक को नैतिक तथा अधार्मिक को धार्मिक बनाकर क्षमा, शांति, करुणा, उदारता, श्रद्‌धा, भक्ति और विनयता आदि गुणों और मूल्यों का लोकमानस में संचार करती हैं।

ये लोकगाथाएँ सत्य, अहिंसा-आस्तेय जैसे आधारभूत, समाज संरक्षक तथा समस्त प्राणियों के प्रति अपनी आत्मवत् व्यवहार करने का अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादन करती है- आत्मनोऽभीष्टानां भूतानांमयामे तथा।

लोकगाथाओं का महत्त्व संक्षेप में इस प्रकार व्यता कर सकते हैं।

1. ऐतिहासिक महत्त्व—लोकगाथाएँ उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं से अधिक इतिहास के अन्वेषण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि ये गाथाएँ अपने कलेवर में प्रभूत ऐतिहासिक सामग्री सँजोए हैं। जाहर पीर और हरदौल की गाथाएँ इसी प्रकार की हैं।

2. भौगोलिक महत्त्व—लोकगाथाओं के द्वारा किसी स्थान की स्थिति, जलवायु, जातियों तथा उनके रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों खान-पान का परिज्ञान सरलता से हो जाता है—

''ब्रज चौरासी कोस, मथुरा मंडल माँहि।''

3. आर्थिक महत्त्व—लोकगाथाओं में लोक जीवन आर्थिक दशा का प्रदर्शन होता है। इनमें सोने की थाली में भोजन परसना, रेशम की चादर, मोती झालर का तकिया के प्रयोग आर्थिक स्थिति को प्रकट करते हैं। गायों का चराना पशु पालना को व्यक्त करता है। गोपिका कृष्ण से कहती है—

''माखन मिसिरी दूँगी कन्हैया मेरी गउऐ चराइलयो।''

4. सामाजिक चित्रण—लोकगाथाओं में सामाजिक जीवन बोलता है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, ननद-भावज आदि रिश्तों का सजीव वर्णन मिलता है। एक गीत बोल देखिए। एक विदा गीत में—

''मय्या के रोए नदिया बहति है,
बाबुल के रोए सागर ताल,
भय्या के रोए हियरा फटत हैं
भावज के हियरा कठोर।''

5. धार्मिक महत्त्व— लोकगीतों और लोकगाथाओं में राम, कृष्ण, जाहर पीर, गंगा माता, तुलसी माता, गौरा-पार्वती, देवी दुर्गा आदि देवी-देवताओं का उल्लेख होता है, जो लोक जीवन के धामक विश्वासों को व्यक्त करते हैं। ब्रज के लोकगीत में प्रदर्शित है—धामक भाव।

''सदा भवानी दाहिनी, सनमुख रहत गणेश।
पाँच देव रक्षा करैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश॥''

6. नैतिक महत्त्व—ब्रज की लोककथाओं और लोकगीतों में लोकजीवन की नैतिक दशा प्रतिबिंबित होती है। सुरभि गाय की लोकगाथा जाहरपीर और हरदौल की गाथा में नैतिक भावों का अभिव्यंजन हुआ है। मैकासुर धर्मधारी का जीवन लोक आदर्श का ज्वलंत उदाहरण है। ब्रजलोक जीवन में पर नारी से संबध रखना वर्जित किया है—

''पर नारी पैनी छुरी, कोई मति लागों अंग।
रावण सौ जोधा मरौ, पर नारी के संग॥''

7. भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व—ब्रजलोक गाथाओं में शब्दों का विपुल भंडार होता है, जो वैज्ञानिकों के लिए अध्ययन और अनुशीलन के परमावश्यक है। एक लोकगीत मैं देखिए—

''ऐसो बनउआ मोतें बनि गयौ
बलमु कलकत्ता चल्यौ गयौ॥''

इस प्रकार—

''अरे कछू, नीचे तौ विछांय लै बेईमान।
परेला मैलो है जायगौ॥''

ब्रजलोक गाथाओं और लोकगीतों में विशाल शब्द संपति उपलब्ध होती है, जो भाषा-शास्त्रियों के लिए महत्त्वपूर्ण है। 'बनउआ', 'परेला' जैसे नए शब्दों का लोकगीतों और लोकगाथाओं का बहुत प्रयोग होता है, जो हिंदी के शब्द भंडार को समृद्ध करने में सहायक होगा तथा भाषा संबंधी अनेक समस्याओं का समाधान संभव हो सकेगा। लोक-साहित्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए ऐमेलिन मार्टिनेंगो ने ठीक ही कहा है—''लोक काव्य व्यक्तिगत या सामूहिक तीव्र भावों के प्रकाशन हैं; लोक कविता और कथाओं का स्रोत राष्ट्रीय जीवन के अंतरतम से निसृत होता है। जनता का हृदय इन गीतों और गाथाओं में ओत-प्रोत रहता है। ऐसा भी समय आता है, जब कि जाति या राष्ट्रीयता की अतिशय भावना ने संपूर्ण राष्ट्र लोक कवि के रूप में परिणत कर दिया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकसाहित्य किसी राष्ट्र की अनमोल धरोहर है, जो आनेवाली पीढ़ियों को सांस्कृतिक संचेतना से सदैव अनुप्राणित करती रहेगी।

❑

लोकगीतों का यौन-मनोविश्लेषण

राधा-कृष्ण ब्रजलोक जीवन के केंद्र बिंदु हैं। धर्म के रक्षक, आध्यात्मिक चेतना के उत्सव तथा मानवीय मूल्यों के आकाशदीप हैं, जिनके भव्य आलोक में ब्रज वासिनी जनता ज्ञान, भक्ति और कर्म में आकंठ मग्न रहती है। कृष्ण जीवन के पर्याय हैं। सारा बृज कृष्णमय और जीवनमय है। राधाकृष्ण की रति और राग से रंजित है, सारा ब्रजलोक। राधा-कृष्ण के जीवन में प्रवाह है सत्य और चिरंतन। यह प्रकाशपूर्ण, सुखमय और अगाध है। ब्रजलोकजीवन की आत्मा के सरोवर में कृष्ण की अमिताभ ज्योति प्रदीप्त रहती है। उसमें जीवन से पलायन नहीं है, विरक्ति नहीं है। आसक्ति की डोर से बँधी है उनकी—विरक्ति।

उनके जीवन के प्रेम के झरने-झरते हैं। प्रेम का कामभाव से घनिष्ठ संबंध होता है। बृज के लोकगीतों में प्रेम है। यौवन का मद है और है—विलास की अँगड़ाई। यद्यपि राधा-कृष्ण का प्रेम दो दिव्य आत्माओं का मिलन है, फिर भी लोकगीतों में ऐंद्रिकता की झलक है। इनमें आध्यात्मिक शृंगार के मनोरम भाव समाविष्ट है। राधा-कृष्ण की केलि-कथाओं तथा उनकी, रसमय लीलाओं का मनोमुग्धकारी चित्रण हुआ है। भारतीय प्रेम के सभी रूपों- अभिलाषा, ईष्र्या, प्रत्याशा, निराशा, कोप, मान, पुनर्मिलन तथा हर्षोल्लास आदि का लोक- कवियों ने बड़ी तन्मयता से वर्णन किया है। जिसमें कामात्मक अनुभूति की मंदिर गंध व्याप्त है। राध-कृष्ण की प्रिया है पत्नी नहीं है। जयदेव ने उसे कृष्ण की पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित किया है, जो कई लोकगीतों में स्पष्ट लक्षित होता है।

इन लोकगीतों में भक्ति तथा श्रद्धाभाव अभिव्यक्त हुआ है, जिसे फ्रायड ने कामात्मक परिकर में रखा है। अखिल मानस जगत् कामशक्ति से ओत-प्रोत है। जिस व्यक्ति में कामवासना संबंधी मानसिक ग्रंथि रहती है, वह अपने आचरण और विचारों को पवित्र बनाने की चेष्टा करता है। यहाँ इस लोकगीत में नारी की अभिलाषा है घनश्याम के दर्शन की, जो रतिभाव को अभिव्यक्त करती है—

''दरस कब दोगे ओ घनश्याम
जो मैं होती मोर की परिवया
मुकट विच रहती ओ घनश्याम''

यहाँ विनयशीला नारी मुकुट में रहकर श्याम के निकट रहने की चाह प्रकट करती है। काश! वह चमेली का फूल होती तो हार बनकर गले में पड़ी रहती यहाँ उसके अचेतन मन की गहराई में पुरुष के आलिंगन में बँधे रहने की कामना निहित है, साथ ही नारी सुगंध प्रिया है चमेली के फूल की महक में यौन उद्दीपन का आभास होता है, आगे इसी गीत में वह घनश्याम के अधरों पर वंशी बनकर रहना चाहती है, जो अधर-चुंबन की प्यासी हैं—

जो मैं होती तेरी बसुरिया...
अधर धरी रहती ओ घनश्याम...

यहाँ श्रद्धा और भक्ति से भावित नारी का प्रेम कामवासना उसे उठकर विनय, स्नेह, दया और करुणा में उदात्त होकर अभिव्यक्त होता है। यहाँ उसका आत्मसमर्पण उसकी मानसिक ग्रंथियों का उद्घाटन करता है। लोकगीत को पंक्तियों में उस श्रद्धामयी सुंदरी में मरण-प्रवृत्ति संपूर्णत: सक्रिय है—

''जो मैं होती बन की हिरनिया।
कृष्ण चलावै चक्र, प्राण तजि देती॥''

इसी प्रकार दूसरे गीत मैं कहा है कि जोवन में संघर्ष और संकट, किंतु भगवान् के भजन से जीवन सुखपूर्वक कट जाएगा—

''हरि भजौ उमरिया कटि जाएगी
जवान भई, जवानी आई,
हँस-खेलि उमरिया कटि जाएगी।''

यहाँ जिजीविषा की मूल प्रवृत्ति पाई जाती है। भगवान् की भक्ति के साथ जीवन कट जाएगा। इसमें प्रवृत्ति से मनोलोक में एक विशेष शक्ति का विकास होता है। नर-नारी में जवानी आती है तो जीवन महक उठता है। दोनों जीवन की राह में साथ-साथ चलते हैं तथा हँस-खेलकर जीवन कट जाता है। यह काम केलि जीवन की सार्वभौमिक संक्रिया है, जो भक्ति भाव में अभिव्यक्ति है। इस जिजीविषा में काम प्रवृत्ति और अहम् प्रवृति के अंश निहित है। दया, प्रेम और भक्ति काम की परिधि में आते हैं।

फ्रायड के अनुसार परपीडन वृत्ति कामुकता का विकृत रूप है, जिसमें नर-नारी एक-दूसरे को पीड़ा पहुँचाते हैं। इसमें कटु शब्द, उपेक्षा, निष्ठुरता ओर कठोरता प्रकट होती है। निम्न लोकगीत में गोपांगना कहती है—

''ऐसे कपटी स्याम मोहि बन होहि गए रे ऊधो।
ऊधौ जौ मैं होती मोर की परिवया
मुकट विच रहती रे ऊधौ।''

यहाँ यौन-मनोविश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि इस लोकगीत में मासोकवाद और सादवाद का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। कामशक्ति नर-नारी की आदि वासना है। मैथुनिक शब्द में प्रेम के जितने रूप हैं सभी अंतर्निहित हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। जैसे स्त्री प्रेम, पितृ-मातृ प्रेम, शिशु वात्सल्य, मित्रता, विश्व प्रेम, वैयक्तिक प्रेम भाव आदि समाविष्ट हैं। नर-नारी के संबंध में यह वासना संप्रयोग की ओर प्रवृत्त होती है। फ्रायड के अनुसार वासना के मूल में उपकर्षण है—प्रस्तुत लोकगीत में भक्ति भाव के साथ यौनाकर्षण प्रबल है—

''तेरा बंसी की धुन सुनकर, मैं बरसाने से आई हूँ
सुना है मैंने मन मोहन की तुम रास रचाते हो
ओ, रंग रसिया, ओ! मन बसिया!
मैं घुँघरू साथ लाई हूँ। तेरी वंशी''

यहाँ नारी की आंतरिक प्रवृत्ति का विश्लेषण हुआ है और उसकी मनोभूमि प्रत्यक्षीकरण, देवी-देवताओं के प्रति आकर्षण को प्रदृशत करता है। वंशी की धुन को सुनकर राधा अपने कृष्ण से मिलने को बरबस आकर्षित होकर चली आती है। नवधा भक्ति में सर्वप्रेमी श्रवण और कीर्तन का उल्लेख हुआ है—कृष्ण रास रचते हैं, जिसमें गायन, वादन और नर्तन होता है। राधा अपने साथ नृत्योन्मद होकर घुँघरू लेकर आती है। वहाँ उसके अचेतन मन की वासनाएँ नृत्य के लिए आतुर हैं।

देवी-देवताओं के गीत—ब्रजलोक जीवन में दूध-पूत की रक्षा, धन-धान्य की प्राप्ति तथा अन्य मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं के प्रीत्यर्थ पूजा, जात तथा भजन-कीर्तन, गायन आदि नर्तन नर-नारी किया करते हैं। देवी के भजन तथा गीतों में उनके आंतरिक रतिभाव का संगीत अधरों पर तैरने लगता है—

''मेरी मय्या की लाल चँुदरिया
जामें गोरौ बदनु झलकै
माथे पै बिंदिया, अँखियन में कजरा,
छतियन पै मय्या हमेल झलकै।''

लाल चुँदरिया तथा उसमें झलकता गोरा बदन, माँथे की बिंदी, आँखों का कजरा तथा छाती पर झलकती हमेल

में नारी के अंतर की प्रीति तथा कामात्मक भावना की अभिव्यक्ति हुई है। ब्रज में गंगा और शिव के विवाह की अद्‌भुत प्रेम कथा प्रचलित है। गंगा शिव की प्रिया है। वह सहनशील और सौम्यता की प्रतिमूत है। वह शांति बनाए रखती है और स्पष्ट करती है अपने आंतरिक मनोभाव को—

''मन-मन पीसूँ, मन-मन छानूँ, मन ही तपति रसोइयाँ,
अपनी बहन के लरिका खिलाऊँ, जनम न ऊतरू देउ हो।''

गंगा पार्वती की सौत है, वह पार्वती को कष्ट देना नहीं चाहती, यहाँ तक वह पार्वती बहन के बालकों को खिलाने की भावना रखती है। वह यौन मनोभूमि पर आत्मपीडऩ को झेलती है। जो मासकोवादिक काम संचेतना को प्रकट करती है। फिर भी पार्वती का मन अशांत रहता है, पार्वती बड़ी है गगा से फिर शिव पर पूर्ण अधिकार चाहती है। नारी सुलभ कामात्मक अनुभूति है नारी सदैव सौतिवाडाह से पीड़ित रहती, है। यह नारी के मनोजगत् का विकार है।

ब्रजांचल में 'कुआबारौ' लोक देवता आगरा में पूजा जाता है। नर-नारी अषाढ़ के महीने में उसकी जात और पूजा करने जाते हैं। नारियाँ बच्चों को नीरोग रखने के लिए पूड़ी-पूआ, अठियावरी तथा फूल-फल ले जाती है और उस देवता को प्रसन्न करने के लिए अपने कोकिल कंठ से राह में गीत गाती जाती है—

''कुआबारौ, मचलि गयौ बागिया में।
जौ कुआबारे तोय भूख लगैगी
मगद के लड्डुआ मेरी अँगिया में,
जो कुआवारे तोय प्यास लगेगी
कंकर कुइया मेरी टँगिया में।''

यहाँ मगद के लड्डुआ अँगिया में और कंकर की कुइया नारी टाँगों में निहित है इससे स्पष्ट यौन आवेग अभिव्यक्त होता है। कुच सुकुमल और गोल लड्डुओं के प्रतीक हैं और जाँघों के मध्य योनि का संकेत देती है। यौन धरातल पर उसके अचेतन मन की वासनाएँ मुखर हो उठी हैं।

कृष्ण का शैशव—कृष्ण के शैशव कालीन गीतों का यौन मनोविश्लेषण करना परमावश्यक है, क्योंकि ब्रज में कान्हा की शैशवकालीन क्रीड़ाएँ और लीलाएँ अत्यंत राग रंजित हैं। फ्रायड के अनुसार जब बच्चे को माँ स्तनपान कराती है, तब मौखिक अवस्था में कामात्मक की प्रिय और आराध्य वस्तु उसकी माँ होती है। क्योंकि प्रेम के जितने स्वरूप हैं, सभी काम संवेगों से संबद्‌ध है। माँ का स्तनपान करना भी शैशविक कामुकता का प्रत्यक्ष निदर्शन है। प्रत्येक माता शिशु को चूमती है और छाती लगाकर प्यार और दुलार करती है यह शिशु और माँ को कामात्मक संतृप्ति प्रदान करता है। यशोदा कृष्ण को प्यार करती है, दुलारती तथा थपथपाती है और रात्रि में या दिन में सुलाते समय लोरियाँ गाती हैं। कृष्ण को परमसुख की अनुभूति होती है। मातृ आशक्ति ग्रंथि का आविर्भाव होता है। उनकी सभी क्रियाएँ जितनी माँ यशोदा से जुड़ी हैं उतनी नंद से नहीं। माँ शिशु कृष्ण को स्वयं पालना झुलाती है देखिए—

कृष्ण को सखियाँ पालने में झुलाती हैं, उनकी भी झुलाने में रतिभावना परितुष्ट होती है। उस स्थिति में माँ यशोदा शिशु कृष्ण का पे्रमातिरेक में विशेष ध्यान रखतीं हैं—

''मेरौ लाला लुढ़कि न जाय,
सखीरी नेंक धीरे झुलाइयौ पालना।''
कन्हैया झूलै पलना, झोरदा दै रही मय्या
चुह की बनावै, लोरी सुनावै, लाला को झुलावै पालना

माँ यशोदा कृष्ण की चिंता में सदैव तभी रहती है। उसका प्रेम वात्सल्य की लहर में व्याप्त है, जो कामात्मक अनुभूति का हार्दिक अभिव्यंजन है। पलना झुलाते समय कोई गोपी कृष्ण के बाल रूप और सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती है। यशोदा माँ कहती है—

''मेरे कान्हा पै ग्वालिनि मचलि गई रे
बुतौ भई दिवानी मेरे स्याम की
तन मन की जाकूँ सुधि न रही रे॥''

यहाँ गोपी की अचेतन मन की रति भावना का प्रकाश हुआ है। माँ यशोदा कहती है यह गुजरिया न जाने कहाँ से आई है, मेरे लाला को कहीं नजर न लग जाए। इसमें उसकी आंतरिक रति बोलती है—

जाने, कहाँ ते आई गुजरिया
लगि न जाइ मेरे कान्हा कूँ नजरिया
जितौ जाई के नाम पै उछलि रहि रे।

वह अपने मनोलोक में शिशु के प्रति अनिष्ट भाव अभिभूत है, जो यौन मनोभाव के विचार से आत्मपीडऩ का अनुभव करती है, जो काम की मासोक वादिक अभिव्यक्ति है। आखिर उसकी अनिष्टात्मक संभावना सत्य हो जाती है और उसकी मानसिक वेदना मुखर उठती है—

''मेरे लाला पै टोंना करि गयो रे
बरसाने की कोई गुजरिया।''

कृष्ण शिशु बड़ा हुआ है गली-गली में दौडऩे लगा अपने बाल-सखाओं के और गोपियों के साथ नाचने भी लगा। लोक में देखिए—

''मेरौ लाला बड़ौ नादान डोलै गली-गली
गोकुल में डोलै, महाबन में डोलै
खेलै ग्वालनु में नादान
मथुरा में डौले, वृंदावन में डोलै
नाचै सखियनु में नादान। डोलै...

फ्रायड ने काम शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में किया है। इसमें प्रेम, स्नेह, ममता आदि भावनाएँ समाहित होती हैं। काम-शक्ति का साधारण अर्थ परितुष्टि की अगाध आंतरिक इच्छा है। कृष्ण बचपन से ही मुखेण, गुदेण, फौलिक लैटेक्ट एवं जैनिटल अवस्थाओं से गुजरते हैं और माँ यशोदा में अपने कन्हैया के प्रति अगाध आंतरिक प्रेम और ममता है। माँ यशोदा गोपियों में अत्यंत विनीत भाव से कहती है, जिसमें उसके अंतस्थ काम मनोभाव की मार्मिक अभिव्यंजना होती है—

''मो गरीबिनी कौ ज्यायौरी
कोई गति मति दीयौ॥
जा काऊ की गगरी फोरै
कलसा मेरे तें लै जइयोरी॥
मो गरीविनी...''

ब्रज के एक लोकगीत में आया है कि कृष्ण अपनी माँ यशोदा से अत्यंत भोले स्वर में कहते हैं—

''मय्या जब मैं घरते चलूँ। बुलाबै घर में, ग्वालिनि मोय॥

औचक हाथु पकरि लै जावै, कहा बताऊँ तोय।
देवर-देवर कहि के बोलै घर में लै जाइ मोय॥ मय्या...
झपटि उतारै काछनी, नंगौ करि देइ मोय।
आपहँु नाचै, मोय नचावै, बेबस करि देइ मोय॥

यहाँ सुधामुखी नारी अपनी अचेतन मन की वासना से उद्दीप्त होकर कृष्ण के मानमोहक रूप को देखकर कृष्ण को अपने घर में ले जाती है, मीठी-मीठी बातें करती है और झपटकर कछिनी उतारकर नंगा कर देती है। कृष्ण के अधोअंगों को देख मुग्ध होकर स्वयं नाचती है और कृष्ण को भी नचाती है। इस तरह वह अपने शारीरिक एवं मानसिक यौन-आवेग को संतृप्त करती है। कृष्ण के रूप से उद्दीप्त होकर उन्हें दही में से चींटी निकालने के लिए बाध्य करती है और अपने पति के साथ सोने लगती है। आगे दर्शनीय है—

''दिन भर दही की चीटी बीनी, यह पति संग रही सोय
बाँह पकरि के गुलचा मारै कहा बताऊँ तोय॥''

यहाँ नारी के सादवादिक मानस के प्रतिबिंब के साथ कृष्ण के आंतरिक मासीकवाद का उद्घाटन होता है। यहाँ कृष्ण और गोपांगना दोनों को काम सुख की अनुभूति होती है। क्योंकि उस नारी की प्रबल इच्छा 'इदम्' धरातल पर मचलती और उसका 'अहं' बलात् कृष्ण को घर के भीतर ले जाता है।

कृष्ण के प्रलुब्धकारी अलौकिक रूप को देखकर गोपियों की अंतर्भूत कामवासना कृष्ण के इर्द-गिर्द घूमने के लिए नित्य बाध्य करती रहती है और वह कृष्ण को अपनी स्वरति भावना की परितृप्ति के लिए सताती रहती है।

सूरदास के किशोर कृष्ण माँ से दुखी होकर कहते हैं—

कोई है कामरि हमनें देखी, जमुना जाति बही।
सूरदास यशोदा के आँगन अँसुअन धार बही॥

दधि लीला—ब्रजांचल शताब्दियों से समृद्ध और संपन्न रहा है। यहाँ अनेक वन और उपवन रहे हैं, जो विविध प्राणियों की लीला भूमि थी। कालिंदी का कल्लोल, कदंब के कुसमों की महक, चिडिय़ों की चहक, खेतों में दुलहन सी लहकती फसलें ब्रजभूमि की छटा को दिव्यता प्रदान करती रही हैं। धन-धान्य से समृद्ध इस धरती पर दूध-दही की नदियाँ बहती रहीं। कृष्ण ने गोपी, ग्वाल और गायों में रहकर अनेक मनोहारी लीलाएँ कीं, उनमें दधि लीला भी कामरस और प्रेम से अभिसिक्त है। ब्रज के लोकगीतों में इसकी लय, गेयता और मधुरता परिव्याप्त है।

काले केशों को सजाकर सुंदरी गोपिका दही बेचने गोकुल, मथुरा और वृंदावन की गलियों में जाती है और मादक स्वर में कहती है—

''लेलो बिहारी नंदलाला, दहिया मेरे लेलो
कोरी मटुकिया में दहिया जमायौ
पानी बूँद न डाला, दहिया मेरा लेलो॥''

अलौकिक सुंदरी राधा का रूप अत्यंत कामोत्तेजक था तथा उसके अंग-अंग की शोभा को देख-देखकर कामदेव भी मूर्च्छित हो जाता। कृष्ण-राधा के यौवनोन्मत रूप को देखकर परिचय पूछते हैं—

''कौन गाम की रहने बाली, कहा नाम तेरौ बाला''

कृष्ण के मनोन्नमत यौवन, यौवन मचलती हुई श्यामल रूप राशि और देह गठन की कोमलता को देख कहने लगी—

''बरसाने की रहने वाली,

मैं राधा नंदलाला, दहिया मेरौ लैलो।''

राधा और कृष्ण का यह अद्‌भुत संयोग है, दोनों की युवावस्था है और यही अवस्था काम को अपनाने का समुचित मौसम है। यहाँ राधा और कृष्ण रति भाव से पूर्ण हैं। रति भाव स्थायीभाव है। मैंने रति की परिभाषा करते हुए लिखा है—किसी अनुकूल विषय की ओर मन के रुझान को रति कहते हैं, प्रीति, प्रेम अथवा अनुराग इसकी अन्य संज्ञाएँ हैं।'' वास्तव में रति नर-नारी की हृदयतंत्री की लय है। आगे के लोकगीत में ब्रजांगना गोकुल, मथुरा और वृंदावन में दही बेचने जाती है। यशोदानंदन उसके नूपुरों की ध्वनि सुनकर आ जाता है और गोपिका की तरह राह रोक लेता है और कहता है—

''गुजरिया दहिया देउ चखाय
प्यारी मेरौ मनु रहि जाय॥
तोरि लाऔ पात बनाय लाऔ दोना,
तुम्हें दहिया देउँ चरवाय। गुजरिया...''

कान्हा दौना के लिए वृक्ष पर पत्ते लेने चढ़ा और गोपिका चुपके निकल गई तो वह पश्चात्ताप करने लगा। यह लोकगीत रतिरंजक है। इसमें प्रीति की व्यंजना हुई है। नर-नारी की इसमें अंतर्गिनी वासना लक्षित होती है। मधुर संवाद एक-दूसरे के कर्ण-रंधों से प्रविष्ट होकर उनके मन:मस्तिष्क को झंकृत कर देते हैं और जननांगों में स्फुरण होने लगता है।

नवयौवना राधा अपने अचेतन मन की वासना को संतृप्त करने के लिए दही बेचने निकलती है। कृष्ण को सजी-धजी राधा मनमोहिनी और प्यारी लगती है। क्योंकि नारी पुरुष हृदय की प्रीति और उसके मानस की उद्‌दीपन कारणी है—

दधि बेचन कूँ राधा चली
कन्हैया जी को प्यारी लगी॥ 2
गोरे-गोरे माँथे पै लाल-लाल बिंदिया—
ईंगुर से माँग भरी॥ कन्हैया...
गोरे-गोरे हाथनु लाल-लाल चुडिय़ाँ,
ऊपर तें मेंहदी लगी। कन्हैया
बड़ी-बड़ी अँखियनु में काला-काला कजरा
ओठों पै लाली लगी॥

यह राधा के सहवासिक मनोभाव का प्रदर्शन नहीं है तो और क्या है?

आचार्य पद्‌मश्री ने कहा है कि नारी को संभोग की तैयारी करते समय अपने पति के मनोनुकूल शृंगार करना चाहिए। राधा-कृष्ण के मनोनुकूल शृंगार कर निकली है। कामदेव की सजीव प्रतिमा सी मादक, मोहक और आकर्षक राधा को देखकर कृष्ण उससे रति विलास के लिए आतुर हो जाते हैं।

माखन लीला—ब्रज में कृष्ण की दधि लीला के साथ माखन लीला का भी अधिक प्रचलन है। कृष्ण माखनप्रिय हैं। वे अपनी माँ यशोदा से बार-बार माखन चाखने का आग्रह करते हैं और माखन खाने का कोई-न-कोई उपाय करते हैं। माँ से विनती करते हुए इस लोक रागिनी में कहते हैं—

''मोकूँ माखन चाखन दैरी, माखन चाखन देरी मय्या।
तेरे ही हा-हा खाऊँ पड़ूँ तेरे पइयाँ, माखन चाखन दैरी मय्या

देखि ऊपरौ छींकौ काटौ, घर में बढ़त विलैया॥ पाखन...
जा माता जमना जलु भरिला, मैं रखवारा ते रौ मय्या।
अली बख्श कहैं नंदरानी, पानी भरन चली
घर रहि गयौ बस चोर कन्हैया॥ माखन...

माँ और बच्चे की प्रीति बड़ी प्रगाढ़ होती है। माँ से अधिक प्रेम करता है और उसका ध्यान माँ में केंद्रित हो जाता है। यह पुत्र की माता के प्रति कामवासना से उद्दीप्त होता है और पिता से ईष्र्या करता है। माता के प्रति पुत्र की आसक्ति को फ्रायड ने ओडीप्स ग्रंथि की संज्ञा दी है। कृष्ण अपनी माँ यशोदा से अधिक लगाव रखते हैं, यह उनके अचेतन मन की कामवासना की ही द्योतक है। माखन चाखन दैरी मय्या तथा तेरे ही 'हा हा' खाउँ में उनके मनोजगत का बिंब उभरता है।

माखन चोरी करना तथा गोपियों को सताना कन्हैया का स्वभाव बन गया था। माँ यशोदा बार-बार समझाती है —

''ओ! माखन के चोरी छोड़ि कन्हैया मैं समझाऊँ तोय।
नित-नित ब्रज की गोपी आवैं, दैंन, उराहनौ मोय।
का-का करै तेरौ लाला कहा बताबें तोय। ओ माखन...

माखन की चोरी करना और गोपियों को तंग करना कृष्ण की सादवादिक काम-वासना का अभिव्यंजन है, क्योंकि इस संक्रिया में कृष्ण को आनंद की अनुभूति होती है। आगे माँ के समझाने पर कि राधा तुम्हारे साथ शादी नहीं करेगी तो उनका कन्हैया स्पष्ट शब्दों में कहता है—

''जा करनी ऐ नांहि छोड़ूँ मय्या शादी होय-न-होय।
सूरदास जसुदा के आगे दियौ कन्हैया रोय।

यहाँ कृष्ण की आत्मपीडऩ की काम-मनोवृत्ति का प्रकाशन हुआ है। इसी प्रकार गोपियाँ दुखी होकर कहती हैं —

अपनौ गाँव लेउ नंदरानी, हम कहूँ अंत बसैंगी जाय॥

यहाँ गोपियों का आत्मपीडऩ काम संज्ञक मनोभाव स्पष्ट होता है। इतना ही क्यों?

''बुतौ ग्वालनु का संग लेकें घर में आइ घुसै,
अँगूठा दिखावै, चलै टेढ़ी चाल है॥''

इस उपालंभ में भी गोपियों को अंतस्थ काम मनोवृत्ति अभिव्यक्त होती है। और कृष्ण को तो अँगूठा दिखाने और मटकती चाल में कामेच्छा की परितृप्ति निहित है। माखन चोरी के साथ गोपियों से कामात्मक छेड़-छाड़ भी कन्हैया किया करता है—

''जसोदा तेरे लाला ने अँगिया मेरी फारी-2
छतिया मेरी मसकी ए री जसोदा॥

अँगिया फाडऩे और स्तनों के मसकने में कृष्ण और गोपांगना को काम सुख का लाभ होता है। कृष्ण भी अपनी माँ को समझाते हुए कहते हैं—

''अँगिया मैंने बेशक फारी ये री मय्या।
छतियाँ नाहिं मसकी एरी मेरी मय्या॥''

नारी के कोमल कांत पयोधर यौन उत्तेजन के प्रधान केंद्र हैं। यहाँ सादवाद और मासोकवाद का अद्भुत

समंजन हुआ है। अचेतन मन की वासनाओं की संतृपित हुई है। काम-सुधा में अभिसिक्त कृष्ण की दधिलीला और माखन लीला का मनोविश्लेषण यहाँ विस्तार से संभव नहीं है।

पनघट लीला—कृष्ण की ललित लीलाएँ, लोकगीतों में व्यंजित हैं। यह कामुक अनुभूतियाँ सृजित हैं। रूपवती नवयौवना गोपांगना अकेली जल भरने जाती हैं। वह सहेलियों के संग नहीं गई ऐसा लगता है कि वह कृष्ण से मिलने के लिए उत्कंठित है। वह कहती है—

वंशीबारे ने घेरि लई अकेली पनियाँ गई-2
हौ तौ करि सिंगार गई, अकेली पनिया जई।

श्रृंगार कर के जाने का अभिप्राय यह है कि वह यौन-मिलन की भावना लेकर चली है, तब कन्हैया सुनहले अवसर को हाथ से क्यों जाने देता। उसने युवती गोपी को घेर लिया, बाँह पकड़ ली चुनरी झटक दी और अँगिया फाड़ दी—

''बाँह मेरी पकरी, चुनरि मेरी झटकी
मेरी अँगिया फारि दई अकेली पनिया गई

यहाँ कृष्ण की चुनरी झटकने में और अँगिया फाडऩे में यौन-आवेग की अनुभूति है—सुखद, आनंदप्रद और जननांग स्फुरणकारी। गोपी मैं भी कृष्ण के स्पर्श का सुख, चुनरी के भटकने तथा अँगिया फाडऩे आत्यांतिक सुख की अनुभूति हुई होगी, जिससे उसके यौनिक अवयव स्रावित हो उठे होंगे। यह भी काम केलि का लघु रूप है।

ब्रज में पनघट पर नारियों गगरी सिर पर रखकर जल भरने के लिए सामूहिक रूप में जाया करती है। किंतु एक दिन ब्रजरानी राधा आँखों में कजरा डालकर और अपनी गोरी-गोरी बाँहों में फूलों के गजरे सजाकर जल भरने चल दी तो राह में कन्हैया मिल गया। दोनों के नयन मिले। सम्मोहित राधा जल भरने की राह को भूल गई। यहाँ नयन के मिलन में अवलोकनात्मक प्रतिमान की कसौटी पर यौन-मनोविश्लेषण सार्थक हुआ है। कामात्मक भावावेग नयनों से प्रस्फुटित हुए हैं। राधा अपनी अंतर्गिनी करवी से कहती है—

''कान्हा वंशी बारौ, सुधि मेरी विसराय गयौ री-2
मुरली की सखी तान सुनाय के-2
नैननु तीर चलाय गयौ री॥ कान्हा...''

कृष्ण की वंशी का स्वर राधा के सुकोमल कर्ण-रंधों में प्रविष्ट हुआ, उसने राधा के स्नायिविक और मांसपेशियों को झंकृत और उत्तेजित कर दिया। स्वर-माधुरी से न उसके हृदय, मस्तिष्क और जननांगों को स्पंदित कर दिया। वह सुध-बुध खो बैठी। यह कामात्मक शक्ति का जादुई प्रभाव है। नयनों से नयन-मिलन, नारी के यौवन की मादकता और उसकी काम जनित संक्रिया में यौनिक चुंबकत्व झलकता है। कृष्ण की चुंबकीय दृष्टि से राधा विचलित हो जाती है और वह कृष्ण से कहती है—

''मोई बार-बार मति छेड़ै, कन्हैया मैं समझाऊँ तोय''

बार-बार छेडऩे में कृष्ण की विकृत यौन वृत्ति का आभास होता है। राधा-कृष्ण की छेड़-छाड़ से कामान्मादिनी हो जाती है और पनघट पर रपटकर गिर जाती है। कृष्ण भागकर उसे गोद में उठाकर बरसाने की ओर चल देते हैं। राधा को कृष्ण के स्पर्श से कामात्मक अनुभूति होती है और कृष्ण को भी राधा के सुवासित अंगों के स्पर्श से यौन सुख का अनुभव होता है। स्पर्श यौन उद्दीपन का सुलभ साधन है।

लज्जा एक ऐसा मनोभाव है, जो नारी के रतिभाव को प्रकट करता है। वह मनोभाव नारी के कपोलों और कानों को मादक करता है। प्रेम क्रीड़ा का यह अनिवार्य अंग है। लज्जा नारी के द्वारा पुरुष के लिए यौन-प्रस्ताव

का प्रत्याख्यान है। नारी बहुरंगी परिधानों में सज-धजकर लज्जा भाव से नाज नखरे और अदाएँ दिखाकर पुरुष को प्रलुब्ध करती है, जो यौन संगम के लिए उत्सुक और आतुर हो जाता है। हैबलॉक एलिस ने लिखा है—''लज्जा प्रारंभ से लेकर अंत तक प्रेम-क्रीड़ा का एक अनिवार्य अंग रहती है। लज्जा के संयम और विलंबों के बिना पुरुष और स्त्री में यौन स्फीति उत्पन्न नहीं हो सकती। यौन तृप्ति के लिए लज्जा की वारुणी अत्यंत आवश्यक है। कृष्ण की छेड़-छाड़ से राधा लज्जा का अनुभव करती है, वह साँवरिया से कहती है—

''साँवरिया दावादार कै लाजनु मरि गई रे साँवरिया-2
पनियाँ भरिकें चली डगर में-2
दई गगरिया फोर कै लाजुन मरि गई के।
लहँगा भीजौ, मेरी अँगिया भीजी-2
भीजौ सब सिंगार कै लाजनु मरि गई रे।
लपकि-झपकि तेंने बाँह गही मेरी-2
डारि अँगिया फारि कै लाजनु मरि गई रे॥

चीरहरण लीला—ब्रज लोक जीवन में कृष्ण के द्वारा जल-क्रीड़ा करती गोपियों का चीरहरण किया गया है। जिसका लोक-कवियों ने बेड़ा सरस वर्णन किया गया है। एक गोपांगना कहता है—

''लै गयौ चीर मुरारी, हाय मैं कैसी करूँ-2
लैके चीर कदम पै चढ़ि गयौ।
मैं जल बीच उघारी, हाय मैं कैसी करूँ
हाथ जोरि कें विनय करति हूँ
दै दे चीर मुरारी हाय मैं कैसी करूँ
चोर तुम्हारौ तब हो मिलैगो-2
जल ते है जाउ न्यारी॥''

यहाँ गोपियाँ नग्न हो जल-क्रीड़ा करती हैं जो कामात्मक प्रदर्शन है। कृष्ण भी उनके स्तन, नितंब तथा जननांगों को देखना चाहते हैं। यह यौन मनोवेग हैं, जो सादवाद का ही एक रूप है। कामांग प्रदर्शन और उसका दर्शन वासना तृप्ति का आनंद प्रदान करती है। रेस्तिफ दला ब्रितो ने कहा है—''वस्तु के क्षेत्र में कर्ता बार-बार उन स्त्रियों को वश में करने की बात करता है, जिनके प्रति वह इस प्रकार की वस्तु को प्रतीक बनानेवाले प्रेम का अनुभव करता है। कृष्ण गोपियों को वश में करने के लिए चीर-हरण का उपक्रम करता है। गोपियाँ कहती हैं कि नग्नावस्था में हम जल से कैसे निकलें ग्वाल ताली बजाकर हँसेंगे। कृष्ण उत्तर देते हुए कहते हैं—

''ग्वाल हँसे हँसने देउ प्यारी-2
हम पुरुष तुम नारी।''

कैसी मार्मिक व्यंजना है नर-नारी का कामात्मक संबंध अत्यंत घनिष्ठ होता है। आगे एक लोकगीत में आया है —

''राधा की चुँदरिया चोरी गई-2
राधा नें चुँदरिया चोरि लई॥ राधा...

राधा की चुँदरी कामात्मक प्रतीक है, जिसमें कृष्ण को रत्यानंद की अनुभूति होती है।

राधा-कृष्ण का प्रेम—ब्रज के लोकगीतों में राधा-कृष्ण के प्रेम हृदयहारी और सरस वर्णन हुआ है। इन लोक

गीतों में प्रेम का मधु है, यौवन का मद है और है विलास की अँगड़ाई। प्रेमानुभूति, सौंदर्य और यौन-मनोजीवन का अद्‌भुत संगम। कृष्ण की आँखें मोहक हैं, मादक हैं और हैं रसभरी। यौन मनोवैज्ञानिकों ने यौन संक्रिया में चक्षुरेंद्रिय को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। नर-नारी एक-दूसरे के आंगिक सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो जाते हैं और प्रेम के पासे से बँध जाते हैं। राधा अपने भाव को प्रकट करते हुए कहती है—

''रसभरी रे मोहन तेरी अखियाँ-2
तेरी अखियाँ रे, कान्हा तेरी अखियाँ
डगर चलत, हियरा हरत
रीझि रहें ब्रज की सखियाँ।''
चुनरी झटकी, मेरी गगरी पटकी,
फारि दई मेरी अँगिया रसभरी...

यहाँ चुनरी झटकने, गगरी पटकने तथा अँगिया फाड़ने में राधा-कृष्ण को स्पर्श-सुख मिलता है। उनकी कामात्मक अनुभूति का सहज उच्छलन हुआ है, यह अवलोकनात्मक प्रतिमान का सटीक उदाहरण है। वह राधा दही बेचती-फिरती है। मथुरा में दही बेचने गई तो कृष्ण के मिलन पर कहती है—

''माखन बेचौ दहिया बेचौ-2
सेंत में जुबन लुटाइ आई, रेलुटवाय आई रे।''

और देखिए—

''बहियाँ पकरि लै गयौ कुंज में-2
चुनरी में दागु लगाय आई रे और लगवाय आई रे।।''

सेंत में यौवन लुटाने और कृष्ण द्‌वारा कुंज में पकडक़र ले जाने में और चुनरी में दाग लगने में, कामात्मक अनुभूतियों के झरने झरते हैं। यहाँ सांभोगिक सुख के बिंब उभरते हैं। अचेतन मन की वासनाएँ नंगी होकर नाच उठी हैं। यहाँ राधा-कृष्ण के सहवासिक क्षरण से ही राधा की चुनरी में दाग लगा है। यह रतिविलास की चरम परणति है।

काम की ऐसी प्रबल शक्ति है कि नारी के बिना पुरुष को जननांग सोने नहीं देते लोकगीत में कृष्ण की दशा दर्शनीय है—

''फूलनु की सेज मोती झलरि कौ तकिया-2
सोबत नाय कान्हा राधा बिना।। बरसे नहिं बदरा॥

इसी प्रकार सुंदरी राधा की नथुनियाँ श्याम के बिना झोका ले रही है। राधा मिलन के लिए चंचल और आतुर हो कहती है—

''झोका लै रही नथुनियाँ स्याम बिना- 2
फूलनि की सेज मोती झल्लरि कौ तकिया- 2
कैसे सोऊँ री ननदिया स्याम बिना॥''

राधा-कृष्ण के अचेतन मनोलोक में रतिविलास की कामना समाहित है। जिसका लोकगीत में व्यतिकरण हुआ है राधा-कृष्ण में उद्‌दीप्त होकर कहती है—

''ओ! बंसी बारे मेरी रँगिदेउ चुँदरिया- 2
ओ बंसी बारे मोकूँ सेज बिछाय देउ-2
आऔ मेरे संग पौढ़ौ बिताय देउ उमरिया॥''

यहाँ कृष्ण के साथ सोने का आग्रह करती है, जो उसकी कामेच्छा को व्यक्त करता है। इसी प्रकार फूलों की सेज और मोती झलरि को तकिया है तो—

''कान्हा कब सोइबे आबैगो, तेरी राधा देखै बार''

कृष्ण वेष बदलकर राधा के निकट फुफेरी बहन बन जाते हैं। राधा बहन समझकर स्वागत सत्कार करती है, कहीं ठहरते हैं और रात की कपड़े उतार कर रखते हैं और कामातुर होकर उसे दबा लेते हैं—

''कपड़े उतारि खुटी पै रखि दये, गहने घरे उतारि,
आधी राति पै सुघर गुजरिया-कान्हा लई दबाय॥''

यहाँ रति विलास की तीव्र उत्कंठा अभिमर्ष हुई है। नर-नारी का कामोन्माद बड़ा ही भयंकर होता है, तब आँखों से दिखाई नहीं देता और कानों में कुछ भी सुनने में नहीं आता। बस सहवास के लिए मन-मस्तिष्क आतुर हो उठता है। राधा-कृष्ण के प्रीति-मन-मिलन के लोक गीतों में रतिक्रीड़ा के अनेक भावों का मनोहारी चित्रण हुआ है।

ब्रजांगना कहती है—

''ज्वानी कौ मत वारौ कान्हा-2
अरे डारै हाथु घघरिया में॥ ''

इसी प्रकार बरसा ऋतु है—भीगी, अँधेरी रात बिजली चमकती रही है—

''बैरी मदन लगावै जोर, साँवरे आई जइयौ
जौ कान्हा मोय कंठ लगावै,
हँसि हँसि करि देउँ भोर साँवरे आइ जइयौ॥''

कृष्ण की लीलाएँ लोकगीतों में बिखरी पड़ी हैं, जिसमें रति गंध और तथा रति विलास के भाव-व्यंजित हैं। काम-स्निगध ये लोकगीत मोहक और श्रुति मधुर है।

होली-फाग के गीत—होली मादक बसंत का त्योहार है। रंगों का त्योहार है और प्रेम का मधुसिक्त उत्सव युवक और युवतियाँ, किशोर-किशोरियाँ, बाल-वृद्धाएँ सभी प्रेम-रंग में रंजित हो उठती हैं। विगत शताब्दियों में होलिकोत्सव मदनोत्सव के रूप में मनायत जाता था। आज के युग में भी कुछ फेर-बदल से होलिकोत्सव पारंपरिक रूप से मनाया जाता है। ब्रजांचल में होली की बड़ी धूम रहती है। ब्रज के होली लोकगीतों में कृष्ण-राधा के प्रेम व्यापारों का अधिक अभिव्यंजन हुआ है—

''आज ब्रज में होरी मेरे रसिया''

गोपांगना होली की मादकता में अपने सुरीले कंठ से गाती है, जो श्याम से होली खेलने के लिए आतुर है—

''हौ हँसि-हँसि होरी खेलूँगी,
जा साँवरिया के संग।''

उसके अचेतन में काम की तरंग है, किंतु यह भी कहती है—

''मैं होली नाहि खेलूँगी जा साँवरिया के संग।
कोरे-कोरे कलस मँगाऔ, केसर घौरो रंग।
भरि पिचकारी स्याम ने मारी चोली है गई तंग॥''

यहाँ चोली के भीतर ही यौवन का उभार है। अत्यंत मादक, लोकलुभावन और पुरुष का चित चोर। इसमें नारी के अचेतन में सुसुप्त वासना अँगड़ाई ले रही है। किशोरी राधा अपने मनो भाव को व्यक्त करती है, जिसमें फ्रायड की मासोकवादिक धारणा को प्रदर्शित किया है—

''मेरी बारी बैस विगारी कान्हा नाइ मानौ रे
जब कान्हा ने चोली बंद खोलौ-2
मैं बरजि-बरजि के हारी॥ कान्हा
जब कान्हा ने नारौ खोलौ-2
मैं तो निहोरे करि-करि हारी॥ कान्हा

विवाह के लोकगीत—विवाह मानव जीवन का प्रमुख संस्कार है। दो पवित्र आत्माओं का मिलन, सुखद भविष्य की आशा। विवाह का जैविक आधार है, जिसमें नर-नारी के अचेतन मन में अवस्थित सारी जैविक मनोवृत्तियों का प्रस्फटन होता है दांपत्य जीवन के पथ पर शुभ-गमन। विवाह नर-नारी को समाज का सहवासिक अनुज्ञापन है। स्वच्छंद रमण की अनुमति है।

ब्रज मंडल में विवाह के लोकगीत कोकिल कंठी नारियों द्वारा निम्न अवसरों पर गाए जाते हैं—

लगुन-सगाई, तेल-ताई, अछूता, मंडप, भात, भाँवर, घूरा-पूजन। बारात, बहार, पल काचार, विदाई के मांगलिक गीतों का विधान हैं ये गीत बर-बधू दोनों ओर गाने का रिवाज है। इनमें प्रच्छन्न के दोनों पक्षों कामानुभूतियों की अभिव्यक्ति होती हैं वर सुंदर, सुकुमार और गोरी सी पत्नी चाहता है, उसकी अंतस्थ कामवृत्ति का सूचक है।

कृष्ण माता यशोदा से मनुहार करते हैं—

''मय्या करि दै मेरो ब्याहु मँगाय दै दुलहन गोरी सी।''

कन्या भी अपनी सखियों से अनुरोध करती है—

''सखीरी मोहि कान्हा की दुलहन बना औ-2
गारे-गोरे अंग में हर दी रचाऔ,
गुलाब रग अँगिया, कुसुम रंग चुँदरी,
मेरे सुहाग कौ साज सजाऔ। सखीरी

फ्रायड के अनुसार छह-सात साल की आयु से लेकर नौ-दस साल तक की अवस्था में बालक-बालिकाओं में लैंगिक इच्छाएँ प्रसुप्त रहती हैं। वे बाह्य व्यापारों में रुचि लेने लगते हैं। खेल-कूद, भागना-दौडऩा और संगी-साथियों में उनकी लगन रहती है इस अवस्था में दमित लैंगिक इच्छाओं और भावनाओं का उदात्तीकरण करके नृत्य-संगीत कलाओं, स्पर्धा तथा प्रतियोगिताओं की ओर आकर्षित होते हैं। किंतु 11-12 साल की उम्र में बालक-बालिकाओं में यौवन का आगमन होता है। इस अवस्था में शारीरिक मानसिक और लैंगिक परिवर्तन और लैंगिक उत्तेजना तरंगित हो उठती हैं तभी तो इस लोकगीत में कृष्ण की दुलहन बनने के लिए आतुर है और वह गोरे-गोरे अंगों में हल्दी, हाथों में मेंहदी, पाँवों में महावर तथा गुलाब रंग अँगिया पहनकर पिया मिलन के लिए उत्कंठित है। यहाँ नारी के अचेतन मन के रहस्य का उद्घाटन हुआ है।

विवाह जीवन का मधुर और रसमय विधान है। बन्ना और बन्नी के हृदय और मस्तिष्क में मीठी-मीठी कामेच्छाएँ तैरने लगती है। दुलहन की क्वारी वासनाएँ मिलन के लिए आतुर हो उठती है और दूल्हा के क्वारे मन को रतिगध मथले लगती है। परिवारी जन विवाह रचने की तैयारी में जुट जाते हैं। नारियों का भी क्या निराला है, उनके ढंग अंग-अंग में सुवास तैरती है, वे अपने मधुर कंठ से झरने लगती है गीतों के निर्झर।

''बन्नी खड़ी लौंग के बिरवातले-2
बन्नी फूल लैन फूल बगिया गई,

बन्ना रसीलौ आइगयौ, बतराइ गयौ,
हरदी चढ़ी बन्नी कूँ नजरें लगाइगयौ॥ 2

क्वारी बन्नी इतनी पवित्र है, जितनी लौंग और फूल बीनने फुलबगिया में जाती है। वहाँ रँगीला बन्ना आ धमकता है और बन्नी से बातें करता है। दोनों का यह संयोग दोनों की कामात्मक मनोवृत्तियों का प्रकाशन है। विपरीत लैंगिक आकर्षण यौन-मनोविश्लेषण की सार्थकता है एक कुमारी से क्वारा युवक प्रणय निवेदन करता है—

''ओ छोरी। तू कहियो माँ सो जाइकै, ओहोरी।
मेरी जोड़ी कौ बरु है बाग में।''

ब्रज में विवाह में बहन को भात पहनाने की प्रथा है। भात के समय सुकुमार नारियों द्वारा भात के शृंगार परक गीत गाए जाते हैं, जो काम-रस से सिक्त हैं। स्त्रियाँ आपस में कामोद्रेक में छेड़-छाड़ और दिल्लगी भी करती हैं। भात पहनानेवाले भातई के लिए कहती हैं—

'लै उड़ि जाय मेरौ भय्या,
ननद सोने की चिरैय्या रे॥'

भात पहनाते समय नारियाँ रस-स्निग्ध गीत गाती हैं, जिनमें अचेतन मन के यौन-मनोवेग मुखर हो उठते हैं—

''मेरे आए रे भतथ्या बड़े सजिकें,
भैंना को टीका लाए, भतय्या बनि के,
झूमरि लाए यार बनि कें॥ मेरे...
भैंना टीका चढ़ावें चौक चढ़ि के
झूमरि पहनावे अटा चढ़ि के॥ मेरे...
भैंना जीजा की खाट द्वारै डारौ।
हम तुम सौबें अटा चढ़ि के॥''

सच तो यह है कि नारी नारी है और पुरुष पुरुष है। नर-नारी का वासनात्मक आदि संबंध है। उनके मनोजीवन में यौन-मिलन की तीव्र उत्कंठा होती है और यौन-आवेगों में रिश्तों की दीवारें ढह जाती है। यौन विश्लेषण के आधार पर सादवादिक एवं मासोकवादिक तथ्यों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। जीजा को द्वार पर डालने में तथा हम-तुम अटा पर चढक़र सोने में सांभोगिक बिंब उभरता है।

ब्रज में बारात जाती है सजधजकर। उस दिन घर मनुष्य की संख्या कम रहती है। उस दिन रात्रि के समय नारियाँ 'खोइय्या 'नामक स्वाँग रचती है। बारात निकालती हैं एक युवती को दुलहन और दूसरी युवती को दूल्हा बनाती है। उन्मुकता उल्लास में नाचती-गाती हैं। पुरुषों से छेड़-छाड़ करती हैं। मारती-पीटती हैं। जिसमें परपीडऩ की प्रवृत्ति है। उन्हें उसमें काम सुख मिलता है एक लोकगीत में नारी का काम नंगा होकर नाचने लगता है—

''मेरौ बलमा गयो बरात, बसूला भातु खाय बुरि मारिलै।''

यह बसूला गीत अधिक चर्चित है। समलैंगिकता की झलक है। शुभ मंडप के नीचे यज्ञ-वेदी के समक्ष दुलहन और दुल्हा बैठते हैं। कलश सजा मंगल घट रखा रहता है। उसके निकट ही माटी के गणेश अपनी अदृश्य आँखों से वैवाहिक क्रियाएँ देखते रहते हैं। पुरोहित मंत्रोचार के साथ दुलहन का हाथ दूल्हा के हाथ में थमाता है, तब उन दोनों के जननांगों में हलका सा स्पंदन होता है और—''सतई भँवरिया रे बेटी भई साजन की।'' यहाँ साजन और सजनी काम की जादुईशक्ति से यौन-मनोलोक में बिहरने लगते हैं और अचेतन मन की वासनाएँ मुसकराने लगती है।

विवाह के बाद दुलहन सखियों की सीख, बड़ों का अशीष और मय्या बाबुल की प्रीति लेकर डोली में बैठ,

पायल छनकाती, चूडिय़ाँ खनकाती और संशकित हृदय से प्रिया के देश चल देती है। ससुराल में बधू का स्वागत होता है, बधाए गाए जाते हैं ''दुलहन आई हमारे द्वार, राम-रंगु बरसैगौ।''

विवाह उन्मुक्त उल्लास का अवसर है। घर-आँगन में आनंद और उल्लास का वातावरण होता है। आज के युग में शहरों में सुहाग की सेज सजती है, महकते फूलों से। उनकी मादक सुगंध दूल्हा और दुलहन के नासिकारंध्रों से प्रवेश कर मस्तिष्क में कामात्मक अनुभूतियों को उद्दीप्त करती है। दूल्हा और दुलहन सुरति केलि जिज्ञासु होते हैं। लजीली दुलहन घूँघट में बैठी न जाने क्या-क्या सोचती है। दूल्हा जब घूँघट पट खोलता है तो वह आँखें तिरछी करके छिपने का प्रयास करती है। किंतु दूल्हा उसे आलिंगन में बाँध लेता है—

''घूँघट पट खोलौ हाय मेरी मय्या
मैं लाजन मरि गई, हाय मेरी मय्या
भरतपुर लुटि गया हाय मेरी मय्या॥''

घूँघट खोलने, नारी के लाज मरने तथा भरतपुर लुटने का स्पष्ट आशय है कि कायात्मक वासनाओं की अनिर्वच अभिव्यक्ति। दुलहन अलसाई हुई प्रात: विलंब से उठती है। उसकी रग-रग में मीठी-मीठी कसक है, चलने-फिरने में कष्ट है। चंचल ननदी परिहास करती है।

''बलम ने ऐसी-तैसी करिदई,
मोपै चलौ फिरौ नहिं जाय॥
मदमाती मेरी छोटी ननदिया मंद-मंद मुसिकाय।''

विवाह नर-नारी के यौन-मिलन का वैध अवसर है, यह जीवन का परम आनंदमय और उल्लासपूर्ण महोत्सव है। आँखों में प्रीति के बिंदु चमकने लगते हैं और समस्त अंगों से रस के झरने झर उठते हैं। यही तो कामात्मक जीवन की पराकाष्ठा है। यहाँ एक बात दर्शनीय है कि आज से पचास-साठ साल पहले सुहाग की सेज सजती नहीं थी। विशेषरूप से गाँव में तो दूल्हा-दुलहन से मिलने का प्रयास करता था। लोकगीत में आया कि नवेली दुलहन का प्रयास करती—

''दूल्हा लिए खटोला डोलै,
बन्नी मुँह से न बोले॥''

इस प्रकार विवाह के मांगलिक गीतों में नर-नारी की यौनाकांक्षाओं और मनोभावों का सार्थक अभिनिवेश हुआ है, जो यौन प्रतिमानों और यौन-विश्लेषण की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

गौने के गीत—गौने के गीत विवाह संस्कार के परिकर में ही आते हैं 'गौना' शब्द संस्कृत के गमन शब्द का अपभ्रंश है। सवर्णों में विवाह के बाद ही बेटी की विदा कर दी जाती, किंतु दलित जाति तथा पिछड़ी जातियों में विवाह के दो-चार साल बाद विदा करने की प्रथा थी। क्योंकि उनमें बाल-विवाह किए जाते थे। इसमें वैज्ञानिक तथ्य तो यह है कि यौन-परिपक्वता पर ही वर-वधू को यौन-मिलन का विधान था। विवाहित युवती अपनी सखी से अपनी मनोव्यथा को प्रकट करती है—

''जोबन ऐड़ी की धमकते धसकौ जाय,
भायेली गौनों कब होइगौ।''

यौवन भी क्या है इसके उभार में रतिगंध तैरने लगती है जो बड़ी प्रलुब्धकारी होती है। नारी की यह यौवन पुरुष-मिलन के लिए व्याकुल कर देता है। उसको पीहर में रहने में सुख नहीं मिलता, क्योंकि सामाजिक वर्जनाओं में रहना पड़ता है। वह आत्म पीड़ित वृत्ति को निम्न लोकगीत में व्यक्त करती है—

''बड़ौ दुख पायौ पीहरबा में बसिकें-2
कबहूँ न ओढ़ी चटक चुँदरिया-2
कबहूँ न चली ठसकि पगु धरिके॥ बड़ौ

उन्मत्त यौवन की स्वच्छंद विचरणा होती है। यह प्रकृति की सहज शाश्वत प्रक्रिया हैं, प्रकृति के कण-कण में कामात्मक संगीत से प्रतिध्वनित हैं, नर-नारी की अचेतन मन की दमित वासनाएँ चेतनालोक में उतरकर उनकी विविध क्रियाओं को संचालित करती हैं ढोला-मारू की प्रेमगाथा में मारू ढोला की स्मृति में व्याकुल है। काम-विदग्धा मारू अपने पालित तोता से कहती है—

''अरे खतु, लै जा गंगा राम मेरे गौने कौ नरबर की।''

नारी गौना होकर ससुराल आती हैं, उसके तन में रंग और मन में पिया मिलन की उमंग होती हैं अर्धरात्रि में उसका पति काम की तरंग में उसकी सेज पर आ धमकता है और नारी के सुकोमल अंगों से खेलने लगता है। गौने में आई नवेली युवती कहती है—

''गौने बारी रैनि कटन दै मेरे रसिया।''

किंतु काम की तरंग में उसकी बात नहीं सुनता। बस अँगिया फाड़ दी और उसे अपनी भुजाओं में बाँध लिया —

''टूटि गए चोली बंद टूटि गए फुंदना,
खुलि गई जाँघें, खुले दो जुबना,
धरि-धरि पटकै नारि पलंग पै सारी राति झकारै॥''

पुरुष योन-मिलन में अति उत्तेजित होकर नारी को कसकर दबाता है। कुचों का मर्दन, दंतछेदन और नखछेदन की क्रियाएँ तीव्र कर देता है। फ्रायड की परपीडऩ और आत्म-पीडऩ के मिलन में अत्यांतिक आनंद की अनुभूति है। यौन-विश्लेषण के सादवाद और मासोकवाद का रसमय समंजन होता है।

ऋतुओं के गीत—ब्रजांचल में ऋतुएँ नवेली दुलहन की भाँति तरह-तरह के परिधान बदलकर आती हैं। गरमी की ऋतु, उफ 'भयंकर ताप' के साथ आती है। धरती का कण-कण जल उठता है। खेत और खलिहान नंगे हो जाते हैं, हरियाली कहीं दिखाई नहीं देती। लू के तप्त झोके शरीर का ताप से विदग्ध कर देते हैं। कहते हैं—

''बालक, बनिता ईख उखारी।
गर्मी ऋतु में चारि दुरवारी।''

नारी को गरमी अधिक सताती है। वह गरमी के ताप से बचने का प्रयास करती है। वह बिजनियाँ पंख झलती है जैसा लोक गीत में आया है—

''गरमी ऋतु आई ओ सावरे-2
तेरी लाल विंजनिया देखि के
ढोरन चली आई ओ साँवरे॥
तेरी बजत बाँसुरिया देखि के
नाचन चली आई ओ साँवरे॥

यहाँ नारी अचेतन मन की अतृप्त इच्छाओं का साँवरे के साथ रहकर बिजनिया झलकर वाह्य ताप के साथ अपने आंतरिक ताप को बुझाना चाहती है। पुरुष के साथ नारी को कामात्मक आनंद की अनुभूति होती है और वह अपने शीतल अंचल की छाया में पुरुष को शीतलता प्रदान करता है, क्योंकि नारी 'उष्ण काले भवेत शीतलम्'। इस

काल में नारी के अंग शीतल हो जाते हैं। नारी गर्मी की ऋतु में भी रतिक्रिया में पुरुष के लिए सुखदायक हो जाती है।

बरसात ऋतुओं की रानी है। प्रकृति हरित चुँदरी ओढक़र वातावरण को सरस बना देती है। बादल उमड़-घुमडक़र बरसते हैं। पूरब को शीतला वायु, भीनी-भीनी फुहार में नर-नारी के मस्तिष्क मैं रति-केलि की भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है, किंतु संगीत और वंशी की स्वर-माधुरी यौनांगों को अधिक उद्दीप्त कर देती है। गोपिका व्याकुल होकर कहती है—

''ओ नागिनी बनि के डसि, मोहन तेरी बाँसुरिया-2
रिमिझिम-रिमिझिम मेहा बरसे, चलि रही पुरवैया-2
मैं कैसे आऊँ प्यारे मोहन मेरी भीजै चुँदरिया॥ ओ नागिनी-''

वंशी का स्वर कर्ण-रंध्रों से प्रविष्ट होकर मस्तिष्क और स्नायुमंडल को झंकृत कर देता है। जिस प्रकार नागिन के अपने शरीर में विष व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार नारी के अंग- अंग में कामात्मक विष तैरने लगता है और वह सहवास के लिए आतुर हो जाती है, यहाँ फ्रायड की आत्म-पीडऩ वृत्ति का अभिव्यंजन हुआ है—

''बदरिया बरसे पिया नहीं जाए।''

शरद ऋतु आते ही आकाश निरभ्र हो जाता है। सरोवरों में कमल खिल उठते हैं। दुग्ध-धवल चाँदनी मुसकराने लगती है। उसकी मादक मुसकान नर-नारी के अचेतन मन की वासनाओं को उद्दीप्त कर देती है नारी अपने पति से सहवास के लिए उत्कंठित और आतुर है, किंतु चाँदनी यौन-मिलन में बाधक है—

''बैरि भई जुन्हइया हाय राम कैसी करूँ-2
जब सैंया मेरे द्वारे आयौ भूंसि उठति लैरिन कुतिया।
हाय राम जब सैंया मेरी बखरी में आयौ-2
खाँसि उठी बैरिन बुढिय़ा॥ हाय राम
जब सैंया चढ़ि आयौ अटरिया-2
जागि उठी ननदुलि पठिया॥ हाय
जब सैंया मेरी सेज पै आयौ-2
रोय उठो ललना दैया हाय राम कैसी करूँ
जैसे-तैसे मैंने ललना सुजाए।
बोलि उठौ मुर्गा हाय राम कैसी करूँ

चाँदनी रात में पति का आना, दरवाजे पर कुतिया का भौंकना, बुढिय़ा का खाँसना, युवती ननदी का जागना तथा सेज पर पहुँचने पर बच्चे का रोना नारी को रति-क्रिया रोकने में बाधक है। उसको इससे मानसिक पीड़ा होती है। यहाँ फ्रायड की पीड़ा-वृत्ति की उद्भावना होती है, प्राय: मुर्गा के बोलने से उसकी तीव्र कामवासना अतृप्त रह जाती है। यह उसकी मासोकवादिक दशा का उद्घाटन हुआ है।

शीतऋतु आती है तो शीत का प्रकोप बढ़ जाता है। वायु बर्फीली चादर ओढक़र बहती है। जनजीवन त्रस्त हो जाता है। बच्चे और बूढ़े थर-थर काँपने लगते हैं। जाड़े की रातें लंबी होती हैं। नारियाँ अपने पति के कंठ से लगकर इन ठंडी रातों को बिताती हैं क्योंकि—

''सरदी ऋतु आई ओ बालमा-2
तेरी लाल रजइया देखिके,

पौढऩ चली आई ओ बालमा॥''

जाड़े की रात कष्टकर होती है, तभी तो एक नवयुवती अपनी ननद से कहती है—

'कटति नाय ननदी जाड़े की राति।'

काम-संतृप्त नारी जाड़े में अपने पति की लाल रजाई देखकर ही उसके साथ शयन करती है। लाल रजाई प्रीति की सूचक है, काम को उद्दीप्त करनेवाली है। कामिनी के अचेतन मन की वासना परितृप्ति के लिए व्याकुल है। वह कह उठती है—

''जंगलिया दावादार है जाडिनु मरि गई रे जंगलिया-2
एकु खटोला दुऐ जनै रे-2
सरका सरकी होय कै जाडिनु मरिगई रे जगलिया-जंगलिया
एक रजइय्या दुऐ जनै रे-2
खींचा तानी होय कै जाडिऩ मरिगई रे अंगलिया॥

नारी पुरुष के साथ लेटी है आलिंगन बद्ध है, किंतु छोटी सी खाट और छोटी सी रजाई है। नारी आत्मपीड़ा का अनुभव कर रही है। क्योंकि रति-क्रिया आनंदमय नहीं हो पा रही है तो पति से कहती है—

''सरकाय लै खटिया जाड़ौ लगे।''

'सरकाय लै खटिया' में फ्रायड को 'इड' और अहं का अद्भुत उद्घाटन हुआ है। रजाई की खींचातानी में सादवादिक और मासोकवादिक वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। ब्रज क्षेत्र में ऋतुओं के लोकगीत प्रकृति के मुग्धकारी उत्तेजकों से संभूत होते हैं।

विविध लोकगीत—ब्रजांचल लोकगीतों का अगाध सागर है, उनका गीतों की थाहपाना और यौन मनोविश्लेषण करना सहज कार्य नहीं है। यहाँ प्रधानत: कतिपय लोकगीतों का विवेचन ही संभव है। कुआँ और पनघट ब्रज लोक संस्कृति के जीवंत निदर्शन रहे हैं। युग की सामूहिक चेतना से युक्त नारियाँ कुआँ और पनघट पर जल भरने जाया करती थीं। आपस में हिलमिलकर हँसती-हँसाती और छेड़-छाड़ करती। गीत गाती हुई—

सासुलि पनिया कैसे जाऊँ रसीले दोऊ नैना-2
बहू ओढ़ै चटक चुँदरिया, सिर धरि लेड, लेजु गंगरिया-2
छोटी ननदी लैलेउ साथ रसीले दोऊ नैना॥ सासुल

यहाँ बधू अपनी सास से जल भरने जाने में इसलिए अपने नयनों को बाधक मानते हुए कहती है, किंतु उसके चेतन मन पर अचेतन मन का साम्राज्य है, जो उसकी जल भरने की संक्रियाओं को संचालित करता है। उसके मानस में प्रच्छन कामासक्ति है। उसकी ननदी साथ है, उसे कदम की छाया में बिठाकर एकांत में अपने प्रेमी से मिलती है। जल भरने जाने में उसकी अधिकारिक वृत्ति 'इड' के धरातल पर तैरती है—

''ननदी बैठौ कदम की छइयाँ,
औरु मैं भरि लाऊँ पनियाँ,
ननदी घर मति कहिजाय
रसीले दोऊ नैंना॥ सासुलि

उसका आंतरिक भय ननदी से न कहने की मनुहार करता है, किंतु ननदी अपनी आंतरिक वृत्ति को नहीं रोक पाती, क्योंकि उसमें स्पदवादिक भाव अंतर्निहित है। तभी तो—

''जाने द्वारे तें रेर लगाई,

अम्मा वहाँ भाभी कौ यार,
पिलाय आई ठंडौ पानिया॥ रसीले...

भाभी भी प्रतिशोध की भावना से भडक़ उठती है, जिसमें उसका 'अहं' और परपीडऩ वृत्ति व्यक्त होती है—

''फागुन में ब्याह करूँगी,
बैसाख में विदा करूँगी,
ननदी फेबर न लूँ तैरो नामु॥ रसीले...''

सुंदरी ब्रजनारि—

''जलु भर हिलोरे लेई रस्सिया रेशम की।''

जल भर लिया उस गोरी ने अपनी कमर की लचक से। अब जब अपने अचेत मन की वासना को स्पर्श की अभिलाषा से प्रेरित होकर कहती है—

''हम पै गगरी भारी, हमारी कोउ,
गगरी उठाएँ जइयौरे॥''

एक युवक गगरी उठा देता है लेकिन काम विधग्धा पनिहारी बड़ी मनुहार करके अपने घर ले जाती है और उससे निवेदन करती है—

आई कें चले मति जइयौ।
सेज पै संग सुलायं जइयौ रे॥''

और अंत में युवक की साथ सोने का आग्रह करती उसकी अंतर्भूत कामवासना चेतन-स्तर पर उभर आती है। काम नर-नारी के जीवन का एक अद्‌भुत रहस्य है। आनंद और विषाद का जनक भी है।

दांपत्य जीवन—ब्रज के लोकगीतों में दांपत्य जीवन की मधुर और सरस अनुभूतियाँ अभिजाल व्यक्त हैं। प्रेम आनंद. उल्लास सर्वोच्च और जीवन के सभी भाव इन लोकगीतों के स्वरों में गूँजते हैं। प्रसिद्‌ध विद्‌वान् डॉ. बटरफील्ड ने कहा है—''विवाहित जीवन के सारे सुखों में नर-नारी के सहवासिक संबंध का महत्त्वपूर्ण स्थान है।'' कामवासना की संतृप्ति के बिना गृहस्थ जीवन विषाक्त हो जाता है। उस विषाक्त धुएँ में नर-नारी की साँसें घुटने लगती हैं। इस कारण तलाक आदि समस्याओं के साथ अनेक यौन-मनोविकृतियाँ पैदा हो जाती हैं।

एक लोकगीत में विवाहित नारी अपने अचेतन मन की अतृप्त कामवासना को व्यक्त करते हुए स्पष्ट रूप से कहती है—

''कुअटा होय ताइ पटवाय लेती, नदिया कौ पुल लेती बनबाय।
भरी जवानी कैसे काटूँ, कंत रहे विदेश में जाय।''

नारी काम-पीड़ित हैं आत्म-पीडऩ वृत्ति को अपने मानस में संजोए है, क्या करे विवाहित जीवन तो यौन-सुख की आकांक्षा में ही संजीवित रहता है। इसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। घर में कलह की खेती होती रहती है। नारी अपने पति से उनकी नपुंसकता पर आवेश में आकर कहती है—

''मेरी उठी जवानी घनघोर, दबतिनाय तो पैरे राजा-2
मेरे घुँघटा भीतर जरति मसाल, बुझति नाय तो पैरे बलमा॥
मेरी चोली भीतर पके अनार, तुरत नाय तो पैरे राजा मेरी
मेरे लहँगा भीतर देवी कौथानु, पुजत नाय तोपै रे राजा॥''

नारी की जवानी काम की तरंग में है, घूँघट में मसाल धधक रही है, चोली में स्तनों के अनार सरस हो उठे

और उसके लहँगा के भीतर जननांग स्फुरित हो उठा है। तीव्र यौन-आवेग है। वह आत्म-पीडऩ से व्यथित है। फ्रायड को मासोकवादिक धारणा की परिपुष्टि होती है तथा दूसरी ओर पुरुष नाकार है, वह नारी के भरपूर यौवन, को दबा नहीं पाता, कामाग्नि को बुझा नहीं पाता, सिहरते कुचो का मर्दन तथा योन संस्थान को रति-क्रिया से संतृप्त नहीं कर पाता। नारी उसे फटकारती है, भत्र्सना करती है यहाँ उसकी यह पीडन-वृत्ति पूर्णत: परिलक्षित होती है।

इसी स्थिति में ग्रहस्थ जीवन में सरलता और मधुरता नहीं होती। चिड़चिड़ापन, लडऩा-झगडऩा, मारना-पीटना नारी को अनजाने ही स्वाभाविक संक्रिया हो जाती है। तब पति भी असंतृप्त होकर नारी मैं लात मारता है—

''मेरे मारी ऐसी लात कमरिया टूट गई॥''

इतना ही क्यों? नारी भी अतृप्त कामवासना से उद्दीप्त होकर कहती—

''मैं मयके चली जाऊँगी, तू देखतौ रहियौ।''

यह पारिवारिक विघटन का, तलाक का प्रधान कारण है। एक विद्वान् ऐरिक फ्राम का कहना है—''प्रेम समानता, स्वतंत्रता और पारस्परिक संतुलन पर आधारित होता है। पर-पीडऩ वृत्ति और आत्म-पीडऩ प्रेम की छद्मवेष में अभिव्यक्ति है।'' सामाजिक संतुलन के लिए सुखद दाम्पत्य जीवन की अत्यंत आवश्यकता है। ब्रजलोक के सामाजिक जीवन में संयुक्त परिवार की परंपरा रही है, किंतु आज के भोगवादी युग में पारिवारिक रिश्तों में विघटन अभिगमन है। परिवार में सास-ससुर, देवर-जेठ, जेठानी-देवरानी सब हिल-मिलकर रहा करते थे। उस समय पति-पत्नी स्वच्छंद रतिक्रिया नहीं कर सकते थे।

यहाँ वासनाभिभूत नारी की मनोदशा का चित्रण प्रस्तुत लोकगीत से देखिए—

''नैना लागे जालिम जोर नैना लागे-2
सासुलि एक मेरी सुनियौ
आजु की राति बेटा ए माँगे दीयौ
ननदी एक बात मेरी सुनियौ,
आजु की राति जगति मति रहियौ''

यहाँ काम-क्रीड़ा की तीव्र उत्कंठा है। उसके अचेतन मन की लगन पति के साथ रमण करने के लिए आतुर है। वह अपने अंतर की काम-वेदना को प्रकट कर रही है और यौन तृप्ति के लिए छटपटा रही है। आत्म-पीडऩ वृति उसके चित्त पर प्रवाहित है। वह व्याकुल होकर कहती है—

''पिछवारे से बोल सुनाय रसिया।
मैं तो अधर धरी पतिका पै''

यहाँ नारी के प्राणों में वासना की तीव्र आग धधक रही है। आखिर उसका पति आ जाता है। वह अत्यंत उत्तेजित होकर उसके कपोलों और सुकुमार ओठों का चुंबन लेता है और नारी को आलिंगन में बाँध लेता है और 'नारा' खोलकर रति-क्रिया में लीन हो जाता है तो परितृप्त नारी की आनंद में आँखें मुँद जाती हैं और उसका भरतपुर लुट जाता है। उसके जननांग अभिक्षरित हो जाते हैं। यही तो यौन विश्लेषण की प्रामाणिकता सिद्ध करता है।

पति जब पत्नी की विदा कराने ससुराल जाता था तो वहाँ उससे मिल नहीं सकता था, ऐसा सामाजिक निषेध था, किंतु उसके हृदय में कामोदभूत अभिलाषा तीव्र होती थी। किसी तरह अवसर पाकर अपनी पत्नी के निकट पहुँच जाता है, काम की संचालक शक्ति बड़ी प्रबल होती है।

''मोय पीहर में मति छेड़ै रे बालम,

धरि लै धीर जिगरिया में
तेरी ससुरारि मायकौ है मेरौ,
परि जाय दागु घघरिया मैं।''

यहाँ फ्रायड को मासोंकवादिक और सादवादिक धारणाएँ समान रूप से अभिव्यंजित हुई हैं। कामात्मक मनोवेग, यौन-संवेग और काम-क्रीड़ा की भावनाएँ लोकगीतों में पूर्णत: परिव्याप्त हैं। जब इन लोकगीतों की शल्य क्रिया की जाती है तो यौनभावनाएँ तथा अचेतन मन की सारी वासनाएँ सामने आकर खड़ी हो जाती हैं और घूँघट न खोलने की मनुहार करती हैं।

मल्हार—ब्रजांचल में मल्हार अत्यंत लोकप्रिय गीत है। बरसा की बहारों और फुहारों के साथ बाग-बगीचों में वृक्षों की डालों पर किशोरियाँ और युवतियों द्वारा झूले-हिंडोले डाले जाते हैं। उनके मधुर कंठ मादक स्वर में मल्हारों के झरने झरने लगते हैं। इस भीनी-भीनी ऋतु में उनके अचेतन मन में शयित काम करवट बदलने लगता है। उसके सुकोमल अंगों में अनिवर्च रस तैरने लगता है। तब से एक मल्हार में वियोगिणी रुक्मिणी के साथ रोने लगती है—

''रोय-रोय पाती रुक्मिणी लिखि रही जी-2
ऐजी कोई अइयौ, कृष्ण भगवान् रोय-2''

रुक्मिणी यहाँ आत्म-पीड़ित है। फ्रायड के 'इड' के अनुसार कृष्ण-मिलन के लिए आतुर है और उसका 'अहं' पाती लिखने के लिए बाधा कर रहा है। माटी की सौंधी गंध, शीतल वायु और मनभावन सावन की फुहारों में नर-नारी के मानस में अनगिनत काम-क्रीड़ाएँ सरसने लगती है। ब्रजांगना स्याम के झूला को देखकर झूलने चली जाती है, क्योंकि उसके सान्निध्य में रत्यात्मक अनुभूति होती है—

''सामन ऋतु आई ओ! साँवरे-2
तेरी झूला पटुली देखिके,
झूलन चली आई ओ साँवरे''

राधा को कृष्ण झूला झुला रहे हैं और सानंद झोटा दे रहे हैं। तो राधा-कृष्ण का अलौकिक सौंदर्य दर्शनीय है—

''बिजुरी सी चमके रानी राधिका,
एजी कोई बादल सें घनश्याम
सावन रस सरसावनौ,
एजी कोई झूलत है घनश्याम''

नारी का सम्मोहक सौंदर्य पुरुष को यौन-मिलन के लिए अप्रत्यक्ष रूप से आमंत्रित करता है। पुष्पांगी गोरी राधा बिजली सी दमकती है और कृष्ण तो है ही घनश्याम। डारविन के निर्वाचनवाद का सटीक उदाहरण है।

ब्रज प्रदेश में बरसा की बहारों में, मल्हारों में रतिसिक्त गीतों का सैलाव सा आ जाता है।

मेला पर्व और त्योहार—ब्रजवासिनी जनता उत्सव प्रिय है। ब्रजलोक जीवन में व्रत, पर्व और त्योहारों का अत्यंत महत्त्व है। यहाँ कितने ही वृतानुष्ठान किए जाते हैं, जिनमें मंगलगीतों के स्वर गूँज उठते हैं। कितने ही व्रतों का ब्रज में प्रचलन है। जन्माष्टमी के दिन ब्रजनारियाँ व्रत रखती हैं और राधा-कृष्ण के गीत बड़े हर्ष और उल्लास के साथ गाती है—

''लाई-लाई नंद के द्वार बधाई मालिनियाँ
फूलनु कौहरबा लाई ललन को,

लाई-लाई फूलन की डलिया॥ बधाई...''

फूलों का हार मालिन लाती है, क्योंकि वह कुसुम प्रिया है। नारी के नासिकारंध्रों से सुगंध प्रविष्ट होकर उसकी ऐंद्रिय; अनुभूति का उद्रेक करती है। इसी प्रकार यशोदा आगे करती है—

''मेरे कान्हा पै ग्वालिनी मचलि गई रे।
बुतौ भई दिवानी मेरे स्याम की,
तन-मन की जाकूँ सुधि न रही रे॥''

कृष्ण के रूप-लावण्य को देखकर ब्रज की गोपी मुग्ध हो जाती हैं और उसे अपने तन-मन का प्रबोध नहीं रहता। यहाँ उसके अचेतन मन की वासना चेतन मन पर प्रवाहित होने लगती हैं। नारी का वात्सल्य भाव भी काम-शक्ति के परिकर में आता है, जो अंतरतम की गहराई में निहित है।

ब्रज लोक में अनेक मेले लगते हैं। देवी-देवताओं के मंदिरों के निकट मेले लगते हैं तथा गंगा-यमुना स्नान के लिए लोग दशहरा आदि अवसरों पर मेले लगाए जाते हैं। मेला देखने के लिए नर-नारियों का सैलाब उमड़ता है। होली के बाद ब्रज में गाँव-गाँव में फूल डोल के रूप में मेले लगा करते थे। उस समय बड़ा प्रिय भाव था, हर्ष और उल्लास के साथ मेलों का आयोजन होता था, किंतु अब धीरे-धीरे यह रिवाज समाप्त हो रहा है। गाँव की गोरी एक लोकगीत में मेला जाने की बहुत हठ कर रही है—

''मैं तो मेला देखन जाऊँगी, मैं तो मेला देखन जाऊँगी।
पाँच आना की पाव जलेबी बैठि सडक़ पर खाऊँगी॥

किंतु उसका पति उससे मना करता है—

''मेला देखन मति जा तू गोरी मैं समझाऊँ तोय
पार साल मेला में खोगई रेवतिया की छोरी।''

मेला में अनेक यौन-विकृत लोग आते हैं। नारी का स्पर्श करने का प्रयास और छेड़-छाड़ करते हैं, सीटी बजाते हैं। मेला देखने में नारी का 'रतिभाव' काम कर रहा है। जो उसकी अचेतन वासनाओं के कारण है। क्योंकि छेड़-छाड़ में भी उसे सुख की अनुभूति होती है। इसलिए वह सज-धजकर मेला देखने चल देती है।

''अरे मैं तो ओढ़ि चुँदरिया, आई हूँ मेले में।
अरे मेरौ जिय घबरायवै घर के झमेले में॥''

मेला में उसे नर-नारी के देखने और मिलने का अवसर मिलेगा। छैल-छबीले युवकों को देखकर कामात्मक आनंद मिलेगा।

सोहर के गीत—ब्रज लोक जीवन में सोहर के गीतों का चलन है। पुत्र जन्म विवाहित जीवन का महोत्सव है। अत: ब्रज में जच्चा और बच्चा के मंगलार्थ नारियाँ अपने कोकिल कंठ से हर्षोल्लास 'सोहर' या 'सोहिले' नामक गीत गाया करती हैं—

जिठानी के भये नंदलाल, चलौ पिया देखि आवें।

शिशु का जन्म नर-नारी के सहवास का प्रतिफल है। यह नारी की जननांगिक सक्रिया है, जो उसकी कामात्मक कामेक्षा की परितृप्ति का प्रमाण है।

एक सोहिले में आया है कि नारी का पति मालिन के रूप में फँसा है तो उसकी पत्नी उससे पूछती है कि आखिर मालिन में ऐसी क्या बात है कि वह अपनी पत्नी को उत्तर देता है? उसको उसके अचेतन मन की वासना सहज में अभिव्यक्त होती है।

''आँखिन कजरा लगावती, माथे बिंदिया सजावती,
मुख में विडिय़ा रे धनिया, फूलवा सेज बिछावती॥
तकिया लगावति है री मेरी धनिया
नैन बिच लेय रमाय, तो संग रंग रंच न रहा रे॥''

मालिन के यहाँ काम-उत्तेजन और कामोद्रक का पूरा प्रबंध है। रति-विलास के लिए मालिन सम्मोहक शृंगार करती है। आचार्य पद्मश्री ने अपने ग्रंथ 'नागर सर्वस्वसारकार' में लिखा है नारी को संभोग के लिए तैयारी करते समय अपने पति या प्रिय के अनुरूप शृंगार करना चाहिए, जो उसे प्रलुब्ध कर सके। मालिन ने अपनी कामेक्षा के संदर्पण का पूर्ण साज-सजाया है।

एक कथात्मक सोहिलों में आया है कि जच्चा घर में अकेली है। एक साधू उसके रूप को देख सम्मोहित हो जाता है और उससे यौन संबंध स्थापित के प्रयत्न में है, किंतु जच्चा रानी उसके हाथ नहीं चढ़ती है। साधू वेदना प्रकट करता है। यहाँ उसके आत्म-पीडऩ की वृत्ति व्यंजित हुई है—

''बारी उमरि की जच्चा रानी बतियन हम छले रे लाल।''

ब्रज में पुत्र-जन्म में नारी की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। उसका पति आता है और उसे अपने हृदय से लगा लेता है —

''राजे लई धन हियरे लगाय, कहौ धन वंदन रे।''

ब्रज में भावज और ननदी में हास-परिहास चलता रहता है और आनंददायक होता है। आनंद ही रति की मानक है। भावज पुत्र को जन्म देती है। ननद अपना नेग माँगती है तो—

''ककनवा माँगे ननदी ललना की बधाई-2
जे ककना मेरे मयके से आए,
ककना नाय देउ ननदी ललना की बधाई

अंत में कहती है—

सिंगट्टा लै जा ननदी ललना की बधाई।''

दोनों की आंतरिक अनुभूतियों का प्रकाशन हुआ है। उनकी अंतश्चेतना में अभिनिहित है। ब्रज लोक जीवन में सोहिले नवजात शिशु के साथ अत्यंत प्राणवान हो उठते हैं। नारी के अचेतन मन की कामनाएँ अचेतन मन के धरातल पर आकर साकार हो उठती है। हर्ष और उल्लास के बाँध खुल जाते हैं, उनकी सरस धारा में विषाद बह जाता है। सोहिले परिवार में आनंद के फूल विकीर्ण कर देते हैं। ब्रज में सोहिलों का प्रभूत कोष उपलब्ध है, जिनमें नारी की रागात्मिक क्रियाएँ निहित हैं।

रसिया—रसिया ब्रज लोकगीत का अत्यंत रस-सिक्त लोकप्रिय गीत है। ब्रज में रसिया छैल-छबीले, स्वच्छंद और नारियों को रिझानेवाले उनसे छेड़-छाड़ करनेवाले रसिक व्यक्ति को कहते हैं। कदाचित् यौन-विकृत कामोन्मत्त चंचल युवक हो सकता है। कृष्ण की रसिकता और राधा की प्रीति ब्रज में भक्ति-भाव से प्रवाहित है। उस युगल मूर्ति के प्रीत्यर्थ रसिक गीत की रचना की गई है। कहते हैं कि रसिया की स्वरधारा बरसाने से ही उद्भूत और प्रवाहित हुई है। रंगीले राधा के साथ ही इसने अभिसार किया है—

''तेरी वंसी की धुनि सुनिके मैं बरसाने आई हूँ।
सुना है मैंने मनमोहन कि तुम रास रचाते हो,
ओ! रंग रसिया, ओ मनबसिया, मैं घुँघरू साथ लाई हूँ॥''

रसिया लोकगीत में नर-नारी के अचेतन मन की दमित वासनाएँ निरावरण होकर थिरकने लगती हैं। काम उन्मत्त होकर ताल देने लगता है। लोककवि छेदीलाल चतुर्वेदी ने गीत की महिमा का बखान किया है—

''और गीत सब गीतरी, रसिया गीत महान
कूदि-कूदि के भरै अति दुल्लर है जाय॥

रसिया का गायक भी रसिया होता है और श्रोता भी। ये दोनों ही रस-विभोर हो जाते हैं, काम की तरंग ही उछलती-कूदती है। लोकगीत में रति-रस की भावना अभिव्यक्त होती है।

''गौने वारी रैनि कटन दै मेरे रसिया।''

पर उसे उस नारी का वर्जन स्वीकार नहीं है। वह कामोन्मत्त होकर उसे धरती पर पटक लेता है। नारी आवेश में आकर कहती है—

''अरे कछु नीचै तौ विछाय लै बेईमान,
परेला मैलौ है जाइगौ॥''

यहाँ फ्रायड की सादवादिक और मासोकवाकि मनोवृत्तियों का सार्थक समन्वय हुआ है। वासना बड़ी बावरी होती है, जो यौवन के ज्वार को उत्तेजित कर देती है। नर-नारी के अंगों में बड़वानल धधक उठती है। नारी रत्योन्मुखी होकर अपने पति से मिलन के लिए आतुर है—

''ऊँची अटरिया ईंट की मोपै चढ़ौ, न उतरौ जाप,
मोटी कमरिया स्याम पकरि लई तौ पकरि लई, मोपै छोड़ै न जाय॥''

नारी सांभोगिकरस में ऐसी डूब जाती है कि वह अपने पति को छोड़ नहीं पाती। रति-बिलास में अंग अपक्षरित होकर ही विराम लेते हैं। प्रकृति की कैसी अद्‌भुत सृष्टि है।

जब काम-वासना प्रखर हो जाती है, तब नर-नारी को गम्य और अगम्य का बोध नहीं रहता, सामाजिक वर्जनाएँ अपंग हो जाती हैं। नैतिक भावनाएँ साँस थाम लेती हैं। पवित्र रिश्ते और संबंध रूढ़िबद्‌ध पिंजड़े को त्यागकर न जाने कहाँ तिरोहित हो जाते हैं। एक उन्मादित कामिनी अपने देवर से कहती है—

''फूलु चमेली को देवर बहौ जातु जमुना में।
मेरे घर अइयोरे, मेरे घर अइयोरे
देवर महलनु रहति अकेली,
ऐसी लिपटूँगी, जैसे अमरबेलि बिरछनु पै॥''

चमेली का फूल मादक होता है। कामदेव के पाँच बाण है कमल का फूल, आम्रमंजरी, नीलकमल, अशोक का फूल तथा चमेली का फूल। चमेली के फूल को देखकर नारी पर काम हावी हो जाता है और रति-विलास के लिए देवर को बुलाती है। भारतीय संस्कृति में भाभी को अगम्य और पवित्र माना गया है, किंतु वह कामातुर है, उसे इसका बोध नहीं रहता और ऐसे लिपटूँगी जैसे अमरबेलि बिरछन पर यहाँ उसके अंचेतन मन की वासना चेतनमन के धरातल पर निरावरण हो गई है।

एक अन्य लोक गीत में काम-संपीड़ित देवर अपनी भाभी को काम संप्रेरक दृष्टि से देखता है और उससे पूछता है कि उसके घूँघट, आँचल तथा लहँगा में काम क्या छिपा है? उसकी यह जिज्ञासा वासना परक है। भाभी भी उसकी बाँकी चितवन से आत्म-पीड़ित हो जाती है और देवर भी तो आहत करनेवाली दृष्टि से देखता है। यहाँ फ्रायड की यौन-मनोविश्लेषण धारणा मासोकवादिक और सादबादिक संचेतनाएँ साथ-साथ चलती हैं देखिए—

''देवर बेईमान हम पै नजरिया मारै-मारै

भाभी तुम्हारे घूँघट में का राज है?
देवर हमारे घूँघट में जरति मसाल नजरि पर मारौ हम पै
भाभी तुम्हारे आँचल में का राज है?
देवर हमारे आँचल में पके अनार॥ हम पै,
भाभी तुम्हारे लहँगा में का राज है?
देवर हमारे लहँगा में देवी का यान है।''

देवर-भाभी के इस संवाद में कामात्मक वातावरण का सृजन हुआ है। लोकगीत की प्रत्येक पंक्ति रस-सिक्त और मधुमय है। आँचल पके अनार और लहँगा में देवी के थान की संज्ञा देकर लोक कवि ने कामोद्रेक किया है। कवि की कल्पना में श्रोता के अचेतन मानस में सहवासिक विंब उभरता है। ब्रजलोक जीवन में ही क्या? सारे मानव जगत् में कामवासना की धारा सदैव बहती रहती है। यही जीवन की संततवाहिनी उत्पादिका शक्ति है—अमर, अक्षय।

❑❑❑